द्रव्यसंग्रह और नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव

द्रव्य-संग्रह

प्रति-परिचय

यहाँ द्रव्य-संग्रहभाषामें उपयुक्त प्रतियोंका परिचय दिया जाता है—

१. ब—यह **बड़ौत** (मेरठ)के दि० जैन पंचायती मन्दिरके शास्त्र-भण्डारकी प्रति है। आरम्भमें हमें यही प्रति प्राप्त हुई थी। इसमें कुल पत्र ४६ हैं। प्रथम पत्रका प्रथम पृष्ठ और अन्तिम पत्रका अन्तिम पृष्ठ खाली हैं—उनपर कोई लिखावट नहीं है। शेष ४५ पत्रों अर्थात् ९० पृष्ठोंमें लिखावट है। प्रत्येक पृष्ठकी लम्बाई ९-९ इंच और चौड़ाई ६-६ इंच है। प्रत्येक पृष्ठमें १३ लाइनें और एक-एक लाइनमें २८ से ३० तक अक्षर हैं। जिस पंक्तिमें संयुक्त अक्षर अधिक हैं उनमें २८ अक्षर हैं और जिसमें संयुक्त अक्षर कम हैं उसमें ३० तक अक्षर हैं। उल्लेखनीय है कि इसमें प्रतिका लेखन-काल भी दिया हुआ है, जो इस प्रकार है—

'इति द्रव्यसंग्रहभाषा संपूर्ण ।। श्री ।। संवत् १८७६ माघ कृष्ण ११ भौमवासरे लिखितं मिश्र सुखलाल बड़ौतमध्ये ।। श्री शुभं मंगलं ददातु ।। श्री श्री ।।' —मुद्रित पृ० ८०।

इस अन्तिम पुष्पिका-वाक्यसे प्रकट है कि यह प्रति माघ कृष्ण ११ मंगलवार सं० १८७६ में मिश्र **सुखलालद्वारा बड़ौतमें** लिखी गई है। यह प्रतिलेखन-काल ग्रन्थलेखन-काल (सं० १८६३) से केवल १३ वर्ष अधिक है—ज्यादा बादकी लिखी यह प्रति नहीं है। फिर भी वह इतने अल्पकाल (१३ वर्ष) में इतनी अशुद्ध कैसे लिखी गयी ? इसका कारण सम्भवतः **वचनिका**की राजस्थानी भाषासे लेखकका अपरिचित होना या प्राप्त प्रतिका अशुद्ध होना जान पड़ता है, जो हो। प्रतिदाता ला० **प्रेमचन्द्रजी** सर्राफने प्रति-प्रेषक बा० **लक्ष्मीचन्द्रजी**को यह कहकर प्रति दी थी कि मूल **वचनिका** ज्यों-की-त्यों छपे—जिस भाषा और जिन शब्दोंमें **पं० जयचन्दजीने** टीका की है वे जरूर कायम रहें। उनकी इस भावनाको ध्यानमें रखा गया है और **पं० जयचन्दजीकी** भाषा एवं शब्दोंमें ही **वचनिका** छापी गई है। इस प्रतिकी **बड़ौत** अर्थ सूचक '**ब**' संज्ञा रखी है।

२. व—यह **ब्यावर**के ऐ० पन्नालाल दि० जैन सरस्वती-भवनकी प्रति है। इसमें कुल पत्र ५७ अर्थात् ११४ पृष्ठ हैं। प्रत्येक पृष्ठकी लम्बाई मय दोनों ओरके हाँसियोंके १० इंच है। १,१ इंच पत्रके दोनों ओर हाँसियोंके रूपमें रिक्त है और मात्र ८ इंचकी लम्बाईमें लिखाई है। इसी तरह चौड़ाई ऊपर-नीचेके हाँसियोंसहित ५ इंच है और दोनों ओर $\frac{3}{4}$, $\frac{3}{4}$ इंच खाली है तथा शेष $3\frac{1}{2}$ इंच चौड़ाईमें लिखाई है। एक पृष्ठमें १० और एक पत्रमें २० पंक्तियाँ तथा प्रत्येक पंक्तिमें प्रायः ३०-३० अक्षर हैं प्रति पुष्ट और मजबूत है तथा शुद्ध और सुवाच्य है। इसमें **बड़ौत** प्रतिकी तरह प्रतिलेखन-काल उपलब्ध नहीं है। जैसाकि उसके अन्तिम पुष्पिका-वाक्यसे स्पष्ट है और जो मुद्रित पृ० ८० के फुटनोटमें दिया गया है। इस प्रतिका सांकेतिक नाम **ब्यावर**-बोधक '**व**' रखा गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. ज—यह **जयपुरके** महावीर-भवन स्थित आमेर-शास्त्रभण्डारकी प्रति है। इसमें कुल पत्र ५२ हैं, अर्थात् १०४ पृष्ठ हैं। प्रथम पत्रका प्रथम पृष्ठ खाली है और उसके दूसरे पृष्ठसे लिखावट आरम्भ है। इसी प्रकार पत्र ५२ के पहले पृष्ठमें सिर्फ चार पंक्तियाँ हैं। इस पृष्ठका शेष भाग और दूसरा पृष्ठ रिक्त है। इस तरह ५०$\frac{1}{2}$ पत्रों अर्थात् १००$\frac{1}{2}$ पृष्ठोंमें लिखावट है। प्रत्येक पृष्ठकी लम्बाई मय दोनों ओरके हांसियोंके १०$\frac{1}{2}$, १०$\frac{1}{2}$ इंच और चौड़ाई मय ऊपर-नीचेके हांसियोंसहित ४$\frac{3}{4}$, ४$\frac{3}{4}$ इंच है। लम्बाईमें १$\frac{1}{4}$, १$\frac{1}{4}$ इंचके दोनों ओर हांसिये हैं तथा चौड़ाईमें भी ऊपर-नीचे $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{2}$ इंच हाँसियोंकी खाली जगह है। इस प्रकार ८ इंच लम्बाई और ३$\frac{3}{4}$ इंच चौड़ाईमें लिखाई है। प्रत्येक पृष्ठमें १० पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्तिमें प्रायः ३२ अथवा कम-बढ़ अक्षर पाये जाते हैं। प्रति पुष्ट, शुद्ध और सुवाच्य है। व्यावर-प्रति और इस प्रतिके पाठ प्रायः सर्वत्र समान हैं। इसका अन्तिम पुष्पिका-वाक्य ठीक उसी प्रकार है जैसा **व्यावर**-प्रतिमें है और जो पुस्तक (पृ० ७४) के अन्तमें मुद्रित है। हाँ, **द्रव्यसंग्रह-भाषाका** अन्तिम पुष्पिका-वाक्य भिन्न है और जो निम्न प्रकार है :—

'इति द्रव्यसंग्रहभाषा संपूर्ण ।। लिपीकृतं माणिकचन्द लेखक लिखापितं सुखराम सिंभूराम पापड़ीवाल रूपाहेडीका शुभं भूयात् ।'

इस पुष्पिका-वाक्यसे दो बातें ज्ञात होती हैं। एक यह कि इस प्रतिके लेखक **माणिकचन्द** हैं और यह **सुखराम सिंभूराम पापडीवाल द्वारा लिखाई गई है**। दूसरी बात यह ध्वनित होती है कि **सुखराम सिंभूराम पापडीवाल रूपाहेडीके** रहने वाले थे और सम्भवतः यह प्रति **रूपाहेडी**में ही लिखी गयी है। मालूम पड़ता है कि यह **रूपाहेडी** उस समय एक अच्छा सम्पन्न कस्बा होगा, जहाँ जैनियोंके अनेक घर होंगे और उनमें धार्मिक जागृति अच्छी होगी। यह 'रूपाहेडी' **जयपुरके** दक्षिणकी ओर करीब २० मीलपर एक छोटेसे गाँवके रूपमें आज भी विद्यमान है और वहाँ ४, ५ जैन घर होंगे,' ऐसा डा० **कस्तूरचन्द्रजी कासलीवाल** के उस पत्रसे ज्ञात हुआ जो उन्होंने २९ जुलाई ६६ को लिखा।

इस प्रतिके प्रथम पत्रके द्वितीय पृष्ठके मध्यमें एक छह पांखुड़ीका सुन्दर कमलका आकार लाल स्याहीसे बना हुआ है, अन्य पत्रोंमें नहीं है। इस प्रतिकी **जयपुर**-सूचक '**ज**' संज्ञा रखी है।

. ग्रन्थ-परिचय

प्रस्तुत मूल ग्रन्थ '**द्रव्यसंग्रह**' है और उसके कर्ता श्री **नेमिचन्द्र** मुनि हैं[1]। इसमें उन्होंने जैनदर्शनमें[2]

१. दव्वसंगहमिणं.....णेमिचंदमुणिणा भणियं जं ।।
—नेमिचन्द्रमुनि, द्रव्यसंग्रह गा० ५८।

२. भारतीय दर्शनोंमें वैशेषिक और मीमांसक दोनों दर्शन पदार्थ तथा द्रव्य दोनोंको मानते हैं। पर उनके अभिमत पदार्थ और द्रव्य तथा उनकी संख्या जैन दर्शनके पदार्थों और द्रव्योंसे बिलकुल भिन्न है। इसी प्रकार न्यायदर्शनमें स्वीकृत केवल पदार्थ और सांख्यदर्शनमें मान्य केवल तत्त्व और उनकी संख्या भी जैन दर्शनके पदार्थों तथा तत्त्वोंसे सर्वथा अलग है। बौद्धदर्शनके चार आर्यसत्य—दुःख, समुदय, मार्ग और निरोध यद्यपि जैनदर्शनके आस्रव, बन्ध, संवर-निर्जरा और मोक्ष तत्त्वोंका स्मरण दिलाते हैं; पर वे भी भिन्न ही हैं और संख्या भी भिन्न है। वेदान्तदर्शनमें केवल एक आत्मतत्त्व ही ज्ञातव्य और उपादेय है तथा वह एकमात्र अद्वैत है। चार्वाकदर्शनमें पृथिवी, जल, अग्नि और वायु ये चार भूततत्त्व हैं और जिनके समुदायसे चैतन्यकी उत्पत्ति होती हैं। चार्वाकदर्शनके ये चार भूततत्त्व भी जैन दर्शनके सात तत्त्वोंसे भिन्न हैं। इन दर्शनोंके पदार्थों, द्रव्यों और तत्त्वोंका उल्लेख अगले पादटिप्पणमें किया गया है, जो अवश्य जानने योग्य हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मान्य छह द्रव्योंका संकलन तथा स्वरूपात्मक कथन किया है। इसके साथ ही पाँच अस्तिकायों, सात तत्त्वों, नौ पदार्थों, दो प्रकारके मोक्षमार्गों, पाँच परमेष्ठियों और ध्यानका भी संक्षेपमें प्रतिपादन किया है। द्रव्योंका कथन मुख्य अथवा आरम्भमें होनेसे ग्रन्थका नाम 'द्रव्यसंग्रह' रखा गया है। यह शब्दपरिमाणमें लघु होते हुए भी इतना व्यवस्थित, सरल, विशद और अपनेमें पूर्ण है कि जैनधर्म-सम्बन्धी प्रायः सभी मोटी बातोंका इसमें वर्णन आ गया है और उनका ज्ञान करानेमें यह पूर्णतः सक्षम है।

ध्यान रहे कि एक तत्त्वज्ञानीको निःश्रेयस अथवा सुखकी प्राप्तिके लिए जिनका सम्यक् ज्ञान आवश्यक है उन्हें सांख्यदर्शनमें[1] २५ तत्त्वों, न्यायदर्शनमें[2] १६ पदार्थों, वैशेषिकदर्शनमें[3] ६ पदार्थों तथा ९ द्रव्यों, मीमांसादर्शनमें[4] भाट्टोंके अनुसार ५ पदार्थों और ११ द्रव्यों तथा प्राभाकरोंके अनुसार ८ पदार्थों और ९ द्रव्यों, बौद्धदर्शनमें[5] ४ आर्यसत्यों एवं चार्वाकदर्शनमें ४ भूततत्त्वोंके रूपमें स्वीकार किया गया है। परन्तु जैनदर्शनमें छह द्रव्यों, पाँच अस्तिकायों, सात तत्त्वों और नौ पदार्थोंके रूपमें उन्हें माना गया है। द्रव्यसंग्रहकारने उनके दार्शनिक विवेचनमें न जाकर केवल उनका आगमिक वर्णन किया है, जो प्रस्तुत ग्रन्थमें बड़ी सरलतासे उपलब्ध है।

(क) विषय

इसमें कुल अण्ठावन (५८) गाथाएँ हैं, जो प्राकृत-भाषामें रची गई हैं। यद्यपि इसमें ग्रन्थकारद्वारा किया गया अधिकारोंका विभाजन प्रतीत नहीं होता, तथापि ब्रह्मदेवकी संस्कृत-टीकाके अनुसार इसमें तीन अधिकार और तीनों अधिकारोंके अन्तर्गत आठ अन्तराधिकार माने गये हैं। इनका विषय-वर्णन इस प्रकार है :—

---

१. यथा—'सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारोऽङ्कारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि, पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः।'

—कपिल, सांख्यशास्त्र १–६१।

२. 'प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां (पदार्थानां) तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः।'

—गौतम अक्षपाद, न्यायसूत्र १–१–१।

३. (अ) द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्य तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम्।'

—कणाद, वैशेषिकदर्शन १–१–४।

(आ) 'पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि।' —वही १–१–५।

४. (अ) 'द्रव्यगुणकर्मसामान्याभावभेदेन पञ्चविधः पदार्थः।'
भाट्टमीमांसक, P. N. Pattabhirama shastri द्वारा Journal of the benares hindu university में प्रकाशित 'भट्टप्रभाकरयोर्मतभेदः' शीर्षक निबन्ध पृ० ३३१।

५. (आ) 'पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्मशब्दतमांसि द्रव्याण्येकादश।'

—भाट्टमीमांसक, वही पृ० ३३१।

(इ) 'द्रव्यगुणकर्मसामान्यशक्तिसादृश्यसंख्यासमवायभेदेनाष्टविधः पदार्थः।'

—प्राभाकरमीमांसक, वही पृ० ३३१।

(ई) 'पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नव द्रव्याणि।'—प्राभाकरमीमांसक, वही पृ० ३३१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. पहला अधिकार 'षड्द्रव्य-पञ्चास्तिकाय-प्रतिपादक' नामका है। इसमें तीन अन्तराधिकार हैं और सत्ताईस गाथाएँ हैं। प्रथम अन्तराधिकारमें चउदह गाथाओंद्वारा जीवद्रव्यका, द्वितीय अन्तराधिकारमें आठ गाथाओंद्वारा पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन पाँच अजीवद्रव्योंका और तीसरे अन्तराधिकारमें पाँच गाथाओंद्वारा जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश इन पाँच अस्तिकायोंका कथन है। प्रथम अन्तराधिकारकी चउदह गाथाओंमें भी पहली गाथाद्वारा मङ्गलाचरण तथा श्रीऋषभजिनेन्द्र-प्रतिपादित जीव और अजीव इन मूल दो द्रव्योंका नाम-निर्देश किया गया है। दूसरी गाथाद्वारा जीवद्रव्यके जीवत्व, उपयोगमयत्व, अमूर्त्तित्व, कर्त्तृत्व, स्वदेहपरिमितत्व, भोक्तृत्व, संसारित्व, सिद्धत्व और विस्रसा ऊर्ध्वगमन ये नौ अधिकार (वर्णन-प्रकार) गिनाये गये हैं। तीसरी गाथासे लेकर चउदहवीं गाथा तक बारह गाथाओंद्वारा उक्त अधिकारोंके माध्यमसे जीवका स्वरूप वर्णित किया है।

२. दूसरा अधिकार '**सप्ततत्त्व-नवपदार्थप्रतिपादक**' नामका है। इसमें दो अन्तराधिकार हैं तथा ग्यारह गाथाएँ हैं। प्रथम अन्तराधिकारमें अट्ठाईसवीं गाथासे लेकर सैंतीसवीं गाथा तक दस गाथाओं द्वारा जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वोंका और दूसरे अन्तराधिकारमें अड़तीसवीं गाथाद्वारा उक्त सात तत्त्वोंमें पुण्य तथा पापको मिलाकर हुए नौ पदार्थोंका स्वरूप-कथन है।

३. तीसरा अधिकार '**मोक्षमार्ग-प्रतिपादक**' नामका है। इसमें भी दो अन्तराधिकार हैं और बीस गाथाएँ हैं। प्रथम अन्तराधिकारमें उनतालीसवीं गाथासे लेकर छियालीसवीं गाथा तक आठ गाथाओंद्वारा व्यवहार और निश्चय दो प्रकारके मोक्षमार्गोंका प्रतिपादन है। यतः ये दोनों मोक्षमार्ग ध्यानद्वारा ही योगीको प्राप्त होते हैं, अतः इसी अधिकारके अन्तर्गत दूसरे अन्तराधिकारमें सैंतालीसवीं गाथासे लेकर सत्तावनवीं गाथा तक ग्यारह गाथाओंद्वारा ध्यान और ध्येय (ध्यानके आलम्बन) पाँच परमेष्ठियोंका भी संक्षेपमें प्ररूपण है। अन्तिम अण्ठावनवीं गाथाद्वारा, जो स्वागताछन्दमें है, ग्रन्थकर्त्ताने अपनी लघुता एवं निरहंकार-वृत्ति प्रकट की है।

इस तरह मुनि श्री **नेमिचन्द्रने इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थमें बहुत ही थोड़े शब्दों**—केवल अण्ठावन (५८) गाथाओंद्वारा विपुल अर्थ भरा है। जान पड़ता है कि इसीसे यह इतना प्रामाणिक और लोकप्रिय हुआ है कि उत्तरवर्ती लेखकोंने उसे सबहुमान अपनाया है। इसके संस्कृत-टीकाकार श्री**ब्रह्मदेवने** इसकी गाथाओंको '**सूत्र**' और इसके कर्त्ताको '**भगवान्**' कहकर उल्लेखित किया है[1]। पण्डितप्रवर **आशाधरजीने अनगारधर्मामृत** की स्वोपज्ञ टीकामें इसकी गाथाओंको उद्धृत करके उनसे अपने **वर्ण्यविषयको** प्रमाणित एवं पुष्ट किया है[2]। भाषा-वचनिकाकार पं० **जयचन्दजीने** भी ग्रन्थके महत्त्वको अनुभव करके उसपर संक्षिप्त, किन्तु विशद **वचनिका** लिखी है। पं० **जयचन्दजी वचनिका** लिखकर ही सन्तुष्ट नहीं हुए, उसपर **द्रव्यसंग्रह-भाषा** अर्थात् हिन्दी-पद्यानुवाद भी उन्होंने लिखा है, जो गाथाके पूरे अर्थको एक-एक चौपाई द्वारा बड़े अच्छे

१. ····भगवान् सूत्रमिदं प्रतिपादयति'—संस्कृत-टीका पृष्ठ ४; 'अत्र सूत्रे'—वही पृ० २१; 'सूत्रं गतम्'—वही पृ० २३; 'तिष्ठन्तीत्यभिप्रायो भगवतां श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवानामिति'—वही पृ० ५८; 'अत्राह सोमाभिधानो राजश्रेष्ठी। भगवन् ? ·· '—वही पृ० ५८; 'भगवानाह'—वही पृ० ५९; 'अत्राह सोमनामराजश्रेष्ठी। भगवन् !····'—वही पृ० १४९; 'भगवानाह'—वही पृ० १४९; 'भगवान् सूत्रमिदं प्रतिपादयति'—वही पृ० २०९; २२३; 'भगवन्'—वही पृ० २२९, २३१।

२. देखिए, अनगारधर्मामृतटीका पृष्ठ ४, १०९, ११२, ११६, २०४ आदि। पृ० ११८ पर तो 'तथा चोक्तं द्रव्यसंग्रहेऽपि' कहकर उसकी 'सव्वस्स कम्मणो' आदि गाथा उद्धृत की गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढंगसे व्यक्त करता है। यह ग्रंथ आज भी लोकप्रिय बना हुआ है और उसपर अनेक हिन्दी-व्याख्याएँ उपलब्ध एवं प्रकाशित हैं। मराठीमें भी इसका कई बार अनुवाद छप चुका है[1]। प्रो० शरच्चन्द्र घोषालके सम्पादकत्वमें आरासे[2] सन् १९१७ में और जैन समाज पहाड़ीधीरज दिल्लीसे सन् १९५६ में अंग्रेजीमें यह दो बार प्रकाशित हो चुका है। अनेक परीक्षालयोंके पाठ्यक्रममें भी यह वर्षोंसे निहित है। इससे स्पष्ट है कि प्रस्तुत ग्रन्थ कितना महत्त्व रखता है।

(ख) लघु और बृहद् द्रव्यसंग्रह :

श्रीब्रह्मदेवने संस्कृत-टीकाके आरम्भमें लिखा है[3] कि '**श्रीनेमिचन्द्र**सिद्धान्तिदेवने पहले २६ गाथाओंमें '**लघु-द्रव्यसंग्रह**' बनाया था, पीछे विशेष तत्त्वज्ञानके लिए उन्होंने '**बृहद्-द्रव्यसंग्रह**'की रचना की थी।' **ब्रह्मदेवके** इस कथनसे जान पड़ता है कि ग्रन्थकारने द्रव्यसंग्रह लघु और बृहद् दोनों रूपमें रचा था—पहले **लघुद्रव्यसंग्रह** और पीछे कुछ विशेष कथनके लिए **बृहद्द्रव्यसंग्रह**। आश्चर्य नहीं कि उन्होंने इस प्रकारकी दो कृतियोंकी रचनाकी हो। जैन साहित्यमें हमें इस प्रकारके प्रयत्न और भी मिलते हैं। मुनि **अनन्तकीर्तिने** पहले **लघुसर्वज्ञ सिद्धि** और बादको **बृहत्सर्वज्ञसिद्धि** बनाई थी। उनकी ये दोनों कृतियाँ उपलब्ध एवं प्रकाशित हैं।

कुछ विद्वानोंका खयाल है कि **लघुद्रव्यसंग्रह**में कुछ गाथाएँ बढ़ाकर उसे ही **बृहद्द्रव्य-संग्रह** नाम दे दिया गया है। परन्तु अनुसन्धानसे ऐसी बात मालूम नहीं होती; क्योंकि न तो संस्कृत-टीकाकारके उक्त कथनपरसे प्रकट होता है[4] और न दोनों ग्रन्थोंके अन्तःपरीक्षणसे ही प्रतीत होता है। **बृहद्द्रव्यसंग्रह**को **लघुद्रव्यसंग्रह**का बृहद्रूप माननेपर उपलब्ध **बृहद्द्रव्यसंग्रह**में **लघुद्रव्यसंग्रह**की सभी गाथाएँ पायी जानी चाहिए थीं। परन्तु ऐसा नहीं है। धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्योंकी लक्षणपरक तीन गाथाओं नं० ८, ९, १० और काललक्षणप्रतिपादिका गाथा नं० ११ के पूर्वार्ध तथा गाथा नं० १२ व १४ को, जो **बृहद्द्रव्यसंग्रहमें** क्रमशः नं० १७, १८, १९, २१ (पूर्वार्ध), २२ और २७ पर पायी जाती हैं, छोड़कर इसकी शेष सब (१९½) गाथाएँ **बृहद्द्रव्यसंग्रहसे** भिन्न हैं। इससे प्रकट है कि **लघुद्रव्यसंग्रह**में कुछ गाथाओंकी वृद्धि करके उसे ही बृहद् रूप नहीं दिया गया है, अपितु दोनोंको स्वतंत्र रूपसे रचा गया है और इसीसे दोनोंके मङ्गल-पद्य[5] तथा उपसंहारात्मक अन्तिम पद्य[6] भी भिन्न-भिन्न हैं।

१., २. पं० जुगलकिशोर मुख्तार, 'द्रव्यसंग्रह-समालोचना', जैन हितैषी, वर्ष १३, अङ्क १२, (सन् १९१८) पृ० ५४१।

३. ४.....श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवैः पूर्वं षड्विंशतिगाथाभिर्लघुद्रव्यसंग्रहं कृत्वा पश्चाद्विनेयतत्त्वपरिज्ञानार्थं विरचितस्य बृहद्द्रव्यसंग्रहस्याधिकारशुद्धिपूर्वकत्वेन वृत्तिः प्रारभ्यते।'—सं० टी० पृ० ४।

५. जीवमजीवं दव्वं जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं।
देविंदविंदवंदं वंदे तं सव्वदा सिरसा ॥१॥—मंगल-पद्य, बृहद्द्रव्यसं०।
छद्दव्व पंच अत्थी सत्त वि तच्चाणि णवपयत्था य।
भंगुप्पाय-धुवत्ता णिद्दिट्ठा जेण सो जिणो जयउ ॥१॥—मंगल-पद्य, लघुद्रव्यसं०।

६. दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा दोससंचयचुदा सुदपुण्णा।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण णेमिचंदमुणिणा भणियं जं ॥५८॥—उपसंहा० पद्य, बृहद्द्रव्यसं०।
सोमच्छलेण रइया पयत्थ-लक्खणकराउ गाहाओ।
भव्ववयार-णिमित्तं गणिणा सिरिणेमिचंदेण ॥२५॥—उपसंहारात्मकपद्य, लघुद्रव्यसं०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ ध्यातव्य है कि **लघुद्रव्यसंग्रह**में उसका नाम '**द्रव्यसंग्रह**' नहीं दिया, किन्तु '**पयत्थ-लक्खण-करणओ गाहाओ**' पदोंके द्वारा उसे '**पदार्थलक्षणकारिणी गाथाएँ**' कहा है, जब कि **बृहद्द्रव्यसंग्रह**में '**दव्वसंगह-मिणं**' पदके द्वारा उसका नाम स्पष्टरूपसे '**द्रव्यसंग्रह**' दिया है और इससे मालूम होता है कि '**द्रव्यसंग्रह**' नामकी कल्पना ग्रंथकारको अपनी पूर्व रचनाके बाद इस **द्रव्यसंग्रह**को रचते समय उत्पन्न हुई है और इसके रचे जाने तथा उसे '**द्रव्यसंग्रह**' नाम दे देनेके उपरान्त '**पदार्थलक्षणकारिणी गाथाओं**'को भी ग्रन्थकार अथवा दूसरोंके द्वारा 'लघुद्रव्यसंग्रह' नाम दिया गया है और तब यह ५८ गाथाओंवाली कृति—'द्रव्यसंग्रह' बृहद्-विशेषणके साथ सुतरां 'बृहद्द्रव्यसंग्रह'के नामसे व्यवहृत एवं प्रसिद्ध हुई जान पड़ती है। अतएव 'लघुद्रव्य-संग्रह'के अन्तमें पाये जानेवाले पुष्पिकावाक्यमें उसके 'लघुद्रव्यसंग्रह' नामका उल्लेख मिलता है[1]।

यहाँ एक प्रश्न यह उठ सकता है कि उपलब्ध '**लघुद्रव्यसंग्रह**' में २५ ही गाथाएँ पायी जाती हैं; जबकि संस्कृत-टीकाकार उसे २६ गाथाप्रमाण बतलाते हैं। अतः वास्तविकता क्या है? इस सम्बन्धमें श्रद्धेय प० जुगलकिशोरजी मुख्तारने ऊहापोहके साथ सम्भावना की है[2] कि 'हो सकता है, एक गाथा इस ग्रन्थ-प्रतिमें छूट गई हो, और सम्भवतः १० वीं-११ वीं गाथाओंके मध्यकी वह गाथा जान पड़ती है जो '**बृहद्द्रव्यसंग्रह**' में '**धम्माधम्मा कालो**' इत्यादि रूपसे नं० २० पर दी गई है और जिसमें लोकाकाश तथा अलोकाकाशका स्वरूप वर्णित है।' इसमें युक्तिके रूपमें उन्होंने कुछ आवश्यक गाथाओंका दोनोंमें पाया जाना बतलाया है। निःसन्देह मुख्तार साहबकी सम्भावना और युक्ति दोनों बुद्धिको लगते हैं। यथार्थमें '**लघुद्रव्यसंग्रह**'में जहाँ धर्म, अधर्म, आकाश आदिकी लक्षणपरक गाथाएँ दी हुई हैं वहाँ लोकाकाश तथा अलोकाकाशके स्वरूपकी प्रतिपादिका कोई गाथा न होना खटकता है। स्मरण रहे कि **बृहद्द्रव्यसंग्रह**में १७, १८, १९, २१ और २२ नं० पर लगातार पायी जाने वाली ये पाँचों गाथाएँ तो **लघुद्रव्यसंग्रह**में ८, ९, १०, ११ और १२ नं० पर स्थित हैं, पर **बृहद्द्रव्यसंग्रह**की १९ और २१ वीं गाथाओंके मध्यकी २० नं० वाली गाथा **लघुद्रव्यसंग्रह**में नहीं है, जिसका भी वहाँ होना आवश्यक था। अतः **बृहद्द्रव्यसंग्रह**में २० नं० पर पायी जाने वाली उक्त गाथा **लघुद्रव्यसंग्रह**की उपलब्ध ग्रन्थ-प्रतिमें छूटी हुई मानना चाहिए। सम्भव है किसी अन्य ग्रन्थ-प्रतिमें वह मिल जाय। उपलब्ध २५ गाथा-प्रमाण यह '**लघुद्रव्यसंग्रह**' अपने संक्षिप्त अर्थके साथ इसी बृहद्द्रव्यसंग्रहमें मुद्रित है।

(ग) अध्यात्मशास्त्र

वस्तुके—मुख्यतया जीवके—शुद्ध और अशुद्ध स्वरूपोंका निश्चय और व्यवहार अथवा शुद्ध और अशुद्ध नयोंसे कथन करनेवाला अध्यात्मशास्त्र है। जो नय शुद्धताका प्रकाशक है वह निश्चय नय अथवा शुद्ध नय है[3]। और जो अशुद्धताका द्योतक है वह व्यवहारनय अथवा अशुद्धनय है। द्रव्यसंग्रहमें इन दोनों नयोंसे जीवके शुद्ध और अशुद्ध स्वरूपोंका वर्णन किया गया है। ग्रन्थकर्त्ताने स्पष्टतया नं० ३, ६, ७, ८, ९, १०, १३, ३० और ४५ वीं गाथाओंमें '**णिच्चयदो**', '**ववहारा**', '**सुद्धणया**' '**असुद्धणया**' जैसे पद-प्रयोगों द्वारा

---

१. इति श्रीनेमिचन्द्रसूरिकृतं लघुद्रव्यसंग्रहमिदं पूर्णम्। —अन्तिम पुष्पिकावाक्य, लघुद्रव्यसं०।

२. अनेकान्त वर्ष १२, किरण ५, पृ० १४९।

३. शुद्धद्रव्यनिरूपणात्मको निश्चयनयः।....अशुद्धद्रव्यनिरूपणात्मको व्यवहारनयः। उभावप्येतौ स्तः, शुद्धा-शुद्धत्वेनोभयथा द्रव्यस्य प्रतीयमानत्वात्। किन्त्वत्र निश्चयनयः साधकतमत्वादुपात्तः। साध्यस्य हि शुद्धत्वेन द्रव्यस्य शुद्धत्वद्योतकत्वान्निश्चयनय एक साधकतमो न पुनरशुद्धत्वद्योतको व्यवहारनयः।

—अमृतचन्द्र, प्रवच० ज्ञेया० गा० ९७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निश्चय और व्यहार अथवा शुद्ध और अशुद्ध नयोंसे जीवके शुद्ध और अशुद्ध स्वरूपोंको बताया है। इसीसे संस्कृत-टीकाकार श्रीब्रह्मदेवने इसे 'अध्यात्मशास्त्र' स्पष्ट कहा है[1] और अपनी यह टीका भी उसी अध्यात्म-पद्धतिसे लिखी है। अतः द्रव्यसंग्रह द्रव्यानुयोगका[2] शास्त्र होते हुए भी अध्यात्म-ग्रन्थ है।

(घ) संस्कृत-टीका

इसपर एकमात्र[3] श्रीब्रह्मदेवकी संस्कृत-टीका उपलब्ध है और जो चार बार प्रकाशित हो चुकी है। दो बार रायचन्द्रशास्त्रमाला बम्बईसे, तीसरी बार पहाड़ीधीरज दिल्लीसे और चौथी बार खरखरी (धनवाद) से। यह मध्यम-परिमाणकी है, न अतिविस्तृत है और न अतिलघु। टीकाकारने प्रत्येक गाथाके पदोंका मर्मोद्घाटन बड़ी विशदतासे किया है। साथ ही दूसरे ग्रन्थोंके प्रचुर उद्धरण भी दिये हैं। ये उद्धरण आचार्य कुन्दकुन्द, गृद्धपिच्छ, समन्तभद्र, पूज्यपाद, अकलङ्क, वीरसेन, जिनसेन, विद्यानन्द, गुणभद्र, नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती, शुभचन्द्र, योगीन्दुदेव और वसुनन्दिसिद्धान्तिदेव आदि कितने ही ग्रन्थकारोंके ग्रन्थोंसे दिये गये हैं, जिनसे टीकाकारकी बहुश्रुतता और स्वाध्यायशीलता प्रकट होती है। गुणस्थानों और मार्गणाओंका विशद प्रतिपादन, सम्बद्ध कथाओंका प्रदर्शन, तत्त्वोंका सरल निरूपण और लोकभावनाके प्रकरणमें ऊर्ध्व, मध्य और अधो लोकका कथन करते हुए बीस विदेहोंका विस्तृत वर्णन उनके चारों अनुयोगोंके पाण्डित्यको सूचित करता है। गाथा नं० ३५ का उन्होंने जो ५० पृष्ठोंमें विस्तृत व्याख्यान किया है वह कम आश्चर्यजनक नहीं है। टीकाकी विशेषता यह है कि इसकी भाषा सरल और प्रसादयुक्त है तथा सर्वत्र आध्यात्मिक पद्धति अपनायी गई है। अपनी इस व्याख्याको ब्रह्मदेवने 'वृत्ति' नाम दिया है[4] और उसे तीन अधिकारों तथा आठ अन्तराधिकारोंमें विभाजित किया है।

(ङ) संस्कृत-टीकामें उल्लिखित अनुपलब्ध ग्रन्थ

इस टीकामें कुछ ऐसे ग्रन्थोंके भी उद्धरण दिये गये हैं, जो आज उपलब्ध नहीं हैं और जिनके नाम-सुने जाते हैं। उनमें एक तो 'आचाराराधनाटिप्पण' है[5], जो या तो श्रीचन्द्रका होना चाहिए और या जय-

---

१. 'अत्राध्यात्मशास्त्रे यद्यपि सिद्धपरमेष्ठिनमस्कार उचितस्तथापि व्यवहारनयमाश्रित्य प्रत्युपकारस्मरणार्थमर्हत्परमेष्ठिनमस्कार एव कृतः।'—ब्रह्मदेव, बृ० सं० टी० पृ० ६।

२. द्रव्यानुयोग श्रुत (आगम) के चार अनुयोगों—स्तम्भों (प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग) मेंसे अन्यतम है। यह जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन तत्त्वोंका प्रकाशन करता है। देखिए, रत्नकरण्डकश्रा० श्लोक ४६।

३. पं० नाथूरामजी प्रेमीने 'जैन साहित्य और इतिहास' (पृ० २०) में प्रभाचन्द्रकृत एक 'द्रव्यसंग्रहपञ्जिका' का उल्लेख किया है, पर वह उपलब्ध न होनेसे उसके बारेमें कुछ कहा नहीं जा सकता। प्रेमीजीने भी नामोल्लेखके सिवाय उसपर कोई प्रकाश नहीं डाला और न अपने उल्लेखका कोई आधार बताया है। इससे मालूम पड़ता है कि यह रचना या तो लुप्त हो गई और या किसी शास्त्रभण्डारमें अज्ञात दशामें पड़ी हुई है। यदि लुप्त नहीं हुई तो अन्वेषकोंकी उसकी अवश्य खोज करनी चाहिए।

४. '.....बृहद्द्रव्यसंग्रहस्याधिकारशुद्धिपूर्वकत्वेन वृत्तिः प्रारभ्यते।'—बृहद्द्रव्य० सं० टी० पृ० २।

५. '.....आचाराधनाटिप्पणे कथितमास्ते।'—सं० टी० पृ० १०६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नन्दिका[1]। दूसरा ग्रन्थ है गन्धर्वाराधना[2] । मालूम नहीं, यह ग्रन्थ कब और किसके द्वारा रचा गया। सम्भव है भगवतीआराधनाको ही गन्धर्वाराधना कहा गया हो । परन्तु जो उद्धरण दिया गया है वह उसमें नहीं है ।

(च) महत्त्वपूर्ण शङ्का-समाधान

इसमें कई शङ्का-समाधान बड़े महत्त्वके हैं । एक जगह शङ्का की गई है[3] कि सम्यग्दृष्टि जीवके पुण्य और पाप दोनों ही हेय हैं, फिर वह पुण्य कैसे करता है ? इसका समाधान करते हुए ब्रह्मदेव लिखते हैं कि 'जैसे कोई व्यक्ति किसी दूसरे देशमें स्थित मनोहर स्त्रीके पाससे आये पुरुषोंका उस स्त्रीकी प्राप्तिके लिए दान (भेंट), सम्मान आदि करता है, उसी तरह सम्यग्दृष्टि जीव भी उपादेयरूपसे अपने शुद्ध आत्माकी ही भावना करता है, परन्तु चारित्रमोहके उदयसे उस निज-शुद्ध-आत्म-भावनामें असमर्थ होता हुआ निर्दोष परमात्मस्वरूप अर्हन्त और सिद्धों तथा उनके आराधक आचार्य, उपाध्याय एवं साधुओंकी परमात्मपदकी प्राप्तिके लिए और विषय-कषायोंको दूर करनेके लिए दान, पूजा आदिसे अथवा गुणस्तुति आदिसे परम भक्ति करता है । इससे उस सम्यग्दृष्टि जीवके भोगोंकी आकांक्षा आदि निदानरहित परिणाम उत्पन्न होता है । उससे उसके बिना चाहे विशिष्ट पुण्यका आस्रव उसी प्रकार होता है जिस प्रकार कुटुम्बियों (कृषकों) को बिना चाहे पलाल मिल जाता है । उस पुण्यसे वह स्वर्गमें इन्द्र, लौकान्तिक देव आदिकी विभूति पाकर वहाँकी विमान, परिवार आदि सम्पदाको जीर्ण तृणके समान मानता हुआ पाँच महाविदेहोंमें पहुँच कर देखता है कि 'यह वह समवसरण है, ये वे वीतराग सर्वज्ञदेव हैं, और ये वे भेदाभेदरत्नत्रयके आराधक गणधरदेवादिक हैं; जिनके विषयमें हम पहले सुना करते थे । उन्हें इस समय प्रत्यक्ष देख लिया' ऐसा मानकर धर्ममें बुद्धिको विशेष दृढ़ करके चौथे गुणस्थानके योग्य अपनी अविरत अवस्थाको न छोड़ता हुआ भोगोंका अनुभव होनेपर भी धर्मध्यानपूर्वक समय यापनकर स्वर्गसे आकर तीर्थंकरादि पदोंके मिलने पर भी पूर्व भवमें भावना किये विशिष्ट भेदज्ञानकी वासनाके बलसे मोह नहीं करता है। इसके पश्चात् जिनदीक्षा लेकर पुण्य-पापरहित निज परमात्मा-

---

१. पं० नाथूरामजी प्रेमी, 'जैन साहित्य और इतिहास' पृ० ८६ ।

२. '.....तर्हि ''तुसमासं घोसंतो शिवभूदी केवली जादो' इत्यादि गन्धर्वाराधनादिभणितं व्याख्यानं कथं घटते ।'—सं० टी० पृ० २३३ ।

३. 'सम्यग्दृष्टेर्जीवस्य पुण्यपापद्वयमपि हेयम् । कथं पुण्यं करोतीति ? तत्र युक्तिमाह—यथा कोऽपि देशान्तरस्थमनोहरस्त्रीसमीपादागतपुरुषाणां तदर्थं दानसन्मानादिकं करोति तथा सम्यग्दृष्टिरप्युपादेयरूपेण स्वशुद्धात्मानमेव भावयति । चारित्रमोहोदयात्तत्रासमर्थः सन् निर्दोषपरमात्मस्वरूपाणामर्हत्सिद्धानां तदाराधकाचार्योपाध्यायसाधूनां च परमात्मपदप्राप्त्यर्थं विषयकषायवर्जनार्थं च दानपूजादिना गुणस्तवनादिना वा परमभक्तिं करोति । तेन भोगाकाङ्क्षादिनिदानरहितपरिणामेन कुटुम्बिनां पलालमिव अनीहितवृत्त्या विशिष्टपुण्यमास्रवति, तेन च स्वर्गे देवेन्द्रलौकान्तिकादिविभूतिं प्राप्य विमानपरिवारादिसम्पदं जीर्ण-तृणमिव गणयन् पञ्चमहाविदेहेषु गत्वा पश्यति । किं पश्यतीति चेत्—तदिदं समवसरणं ते एते वीतरागसर्वज्ञाः ते एते भेदाभेदरत्नत्रयाराधका गणधरदेवादयो ये पूर्वं श्रूयन्ते त इदानीं प्रत्यक्षेण दृष्टा इति मत्वा विशेषेण दृढधर्ममतिर्भूत्वा चतुर्थगुणस्थानयोग्यामात्मनोऽविरतावस्थामपरित्यजन् भोगानुभवेऽपि सति धर्मध्यानेन कालं नीत्वा स्वर्गादागत्य तीर्थंकरादिपदे प्राप्तेऽपि पूर्वभवभावितविशिष्टभेदज्ञानवासनाबलेन मोहं न करोति । ततो जिनदीक्षां गृहीत्वा....मोक्षं गच्छति । मिथ्यादृष्टिस्तु....।'

—सं० टी० पृ० १५९–१६० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का ध्यान करके मोक्षको प्राप्त करता है। पर मिथ्यादृष्टि तीव्र निदानजनित पुण्यसे भोगोंको पाकर, अर्धचक्रीरावणादिकी तरह, पीछे नरकको जाता है।'

इस शङ्का-समाधानसे सम्यग्दृष्टिकी दृष्टिसे पुण्य-पापकी हेयतापर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इसी तरह इस टीकामें ब्रह्मदेवने और भी कई शङ्का-समाधान प्रस्तुत किये हैं, जो टीकासे ही ज्ञातव्य हैं।

(छ) अन्य टीकाएँ

उक्त संस्कृत-टीकाके अतिरिक्त अन्य भाषाओंमें भी इसके रूपान्तर हुए हैं। मराठीमें यह गांधी नेमचन्द बालचन्द द्वारा कई बार छप चुका है। अंग्रेजीमें भी इसके दो संस्करण क्रमशः सन् १९१७ और १९५६ में निकले हैं और दोनोंके रूपान्तरकार एवं सम्पादक प्रो० घोषाल हैं। हिन्दीमें तो इसकी कई विद्वानोंद्वारा अनेक व्याख्याएँ लिखी गई हैं और वे सब प्रकाशित हो चुकी हैं। इनमें बा० सूरजभानजी वकील, पं० हीरालालजी शास्त्री, पं० मोहनलालजी शास्त्री और पं० भुवनेन्द्रजी 'विश्व' की टीकाएँ उल्लेखनीय हैं।

(ज) द्रव्यसंग्रह-वचनिका

ब्रह्मदेवकी संस्कृत-टीकाके बाद और उक्त टीकाओंसे पूर्व पण्डित जयचन्दजी छावड़ाने इसपर देश-भाषामय (ढूंढारी-राजस्थानीमें) वचनिका लिखी है। यह वचनिका वि० सं० १८६३ (सन् १८०६) में रची गयी है,[1] जो लगभग १६० वर्ष प्राचीन है और अब पहली बार प्रकाशमें आ रही है। इसमें गाथाओंका संक्षिप्त अर्थ व उनका भावार्थ दिया गया है। भाषा परिमार्जित, प्रसादपूर्ण और सरल है। स्वाध्यायप्रेमियों-के लिए यह बड़ी उपयोगी है। पं० जयचन्दजीने अपनी इस वचनिकाका आधार प्रायः ब्रह्मदेवकी संस्कृत-टीकाको बनाया है। तथा उसीके आधारसे अनेक शङ्का-समाधान भी दिये हैं। वचनिकाके अन्तमें उन्होंने स्वयं लिखा है कि **'याका विशेष व्याख्यान याकी टीका, ब्रह्मदेव आचार्यकृत है, तातैं जानना।'** इसमें कई चर्चाएँ बड़े महत्त्वकी हैं और नयी जानकारी देती हैं।

(झ) द्रव्यसंग्रह-भाषा

उक्त वचनिकाके बाद पं० जयचन्दजीने द्रव्यसंग्रहका चौपाई-बद्ध पद्यानुवाद भी रचा है, जिसे उन्होंने **'द्रव्यसंग्रह-भाषा'** नाम दिया है।[2] एक गाथाको एक ही चौपाईमें बड़े सुन्दर ढंग एवं कुशलतासे अनूदित किया गया है और इस तरह ५८ गाथाओंको ५८ चौपाइयाँ, आदिमें एक और अन्तमें दो इस प्रकार ३ दोहे, सब मिलाकर कुल ६१ छन्दोंमें यह **'द्रव्यसंग्रह-भाषा'** समाप्त हुई है। आरम्भके दोहामें मङ्गल और छन्दोंके माध्यमसे द्रव्यसंग्रहको कहनेकी प्रतिज्ञा की है[3]। तथा अन्तके दो दोहोंमें प्रथम (नं ६०) के द्वारा अपनी

---

१. संवत्सर विक्रमतणूं, अठदश-शत त्रयसाठ।
श्रावणवदि चोदशि दिवस, पूरण भयो सुपाठ ॥५॥ —प्रस्तुत वचनिका, ३रा अधिकार, पृ० ७४।

२. द्रव्यसंग्रहभाषाका आदि और अन्तभाग, पृ० ७५ व ८०।

३. देव जिनेश्वर वंदि करि, वाणी सुगुरु मनाय।
करूं द्रव्यसंग्रहतणी, भाषा छंद वणाय ॥१॥
—प्रस्तुत वचनिका पृ० ८०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लघुताको मुनि नेमिचन्द्रकी लघुतासे अधिक प्रकट किया है[1]। दूसरे दोहेके द्वारा अन्तिम मङ्गल किया है[2]। इस तरह पं० जयचन्दजीकी यह रचना भी बड़ी उपयोगी और महत्त्वकी है। बालक-बालिकाओंको वह अनायास कण्ठस्थ कराई जा सकती है।

२. नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव

(क) द्रव्यसंग्रहके कर्त्ताका परिचय

इसके कर्त्ता मुनि नेमिचन्द्र हैं। जैसा कि ग्रन्थकी अन्तिम (५८ वीं) गाथासे प्रकट है। संस्कृत-टीकाकार श्रीब्रह्मदेव भी इसे मुनि नेमिचन्द्रकी ही कृति बतलाते हैं। अब केवल प्रश्न यह है कि ये मुनि नेमिचन्द्र कौन-से नेमिचन्द्र हैं और कब हुए हैं तथा उनकी रची हुई कौन-सी कृतियाँ हैं; क्योंकि जैन परम्परामें नेमिचन्द्र नामके अनेक विद्वान् हो गये हैं ? इसी सम्बन्धमें यहाँ विचार किया जाता है।

(ख) नेमिचन्द्र नामके अनेक विद्वान्

१. एक नेमिचन्द्र तो वे हैं, जिन्होंने गोम्मटसार, त्रिलोकसार, लब्धिसार-क्षपणासार जैसे मूर्द्धन्य सिद्धान्त-ग्रन्थोंका प्रणयन किया है और जो '**सिद्धान्तचक्रवर्ती**' की उपाधिसे विभूषित थे[3] तथा गंगवंशी राजा राचमल्लके प्रधान सेनापति चामुण्डराय (शक सं० ९०० वि सं० १०३५) के गुरु भी थे[4]। इनका अस्तित्व-समय वि० सं० १०३५ है।

२. दूसरे नेमिचन्द्र वे हैं, जिनका उल्लेख वसुनन्दि सिद्धान्तिदेवने अपने उपासकाध्ययन (गा० ५४३) में किया है और जिन्हें 'जिनागमरूप समुद्रकी वेला-तरङ्गोंसे धुले हृदयवाला' तथा 'सम्पूर्ण जगत्में विख्यात' लिखा है[5]। साथ ही उन्हें नयनन्दिका शिष्य और अपना गुरु भी बताया है[6]।

३. तीसरे नेमिचन्द्र वे हैं, जिन्होंने प्रथम नम्बरपर उल्लिखित नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीके गोम्मटसार (जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड दोनों) पर '**जीवतत्त्वप्रदीपिका**' नामकी संस्कृत-टीका, जो अभयचन्द्रकी '**मन्दप्रबोधिका**' और केशववर्णीकी संस्कृत-मिश्रित कनडी टीका '**जीवतत्त्वप्रदीपिका**' इन दोनों टीकाओंके आधारसे रची गई है, लिखी है।

४. चौथे नेमिचन्द्र प्रस्तुत द्रव्यसंग्रहके कर्त्ता नेमिचन्द्र हैं।

---

१. 'द्रव्यसंग्रह-भाषा' पद्य नं० ६०, वचनिका पृ० ८०।

२. वही, पद्य नं० ६१, पृ० ८०।

३. 'जह चक्केण य चक्की छक्खंडं साहियं अविग्घेण।
तह मइ-चक्केण मया छक्खंडं साहियं सम्मं॥ —कर्मका० गा० ३९७।

४. चामुण्डरायने इन्हींकी प्रेरणासे श्रवणबेलगोला (मैसूर) में ५७ फुट उत्तुंग, विशाल एवं संसार-प्रसिद्ध श्रीबाहुबली स्वामीकी मूर्तिका निर्माण कराया था।

५. सिस्सो तस्य जिणागम-जलणिहि-वेलातरंग-धोयमणो॥
संजाओ सयल-जए विक्खाओ णेमिचंदु त्ति॥५४३॥

६. तस्य पसाएण मए आइरिय-परंपरागयं सत्थं।
वच्छल्लयाए रइयं भवियाणमुवासयज्झयणं॥४४४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन चार नेमिचन्द्रोंके सिवाय, सम्भव है, और भी नेमिचन्द्र हुए हों। पर अभीतक हमें इन चारका ही पता चला है।

अब विचारणीय है कि ये चारों नेमिचन्द्र एक ही व्यक्ति हैं अथवा भिन्न-भिन्न ?

१. जहाँ तक प्रथम और तृतीय नेमिचन्द्रकी बात है, ये दोनों एक व्यक्ति नहीं हैं। प्रथम नेमिचन्द्र तो मूल ग्रन्थकार हैं और तीसरे नेमिचन्द्र उनके टीकाकार हैं। तथा प्रथम नेमिचन्द्रका समय विक्रमकी ११ वीं शताब्दी है[1] और तीसरे नेमिचन्द्रका ईसा की १६ वीं शताब्दी है[2]। अतः इन दोनों नेमिचन्द्रोंके पौर्वापर्यमें प्रायः ५०० वर्षका अन्तर होनेसे वे दोनों एक नहीं हैं।

२. प्रथम तथा द्वितीय नेमिचन्द्र भी एक नहीं हैं। प्रथम नेमिचन्द्र जहाँ विक्रमकी ११ वीं शताब्दी (वि० सं० १०३५) में हुए हैं[3] वहाँ द्वितीय नेमिचन्द्र उनसे लगभग १०० वर्ष पीछे—१२ वीं शताब्दी (वि० सं० ११२५) के विद्वान् हैं; क्योंकि द्वितीय नेमिचन्द्र वसुनन्दि सिद्धान्तिदेवके गुरु थे और वसुनन्दिका समय १२वीं शताब्दी (वि० सं० ११५०) है[4]। इसके अलावा, प्रथम नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती कहे जाते हैं और दूसरे नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव।

३. प्रथम और चतुर्थ नेमिचन्द्र भी भिन्न हैं। चतुर्थ नेमिचन्द्र जहाँ अपनेको 'तनुसूत्रधर' (अल्पज्ञ) कहते हैं[5] वहाँ प्रथम नेमिचन्द्र चक्रवर्तीकी तरह सिद्धान्तके छह खण्डोंका विजेता—'सिद्धान्तचक्रवर्ती' अपनेको प्रकट करते हैं[6]। संस्कृतटीकाकार ब्रह्मदेवने भी अपनी टीकामें द्रव्यसंग्रहकार चौथे नेमिचन्द्रको जगह-जगह 'सिद्धान्तिदेव' ही लिखा है[7], सिद्धान्तचक्रवर्ती नहीं। अपि च, प्रथम नेमिचन्द्र अपने गुरुओंका उल्लेख करते हुए पाये जाते हैं[8], पर चौथे नेमिचन्द्र ऐसा कुछ नहीं करते—मात्र अपना ही नाम देते देखे जाते हैं[9]। इसके अतिरिक्त दोनोंमें मान्यताभेद भी है। प्रथम नेमिचन्द्रने भावास्रवके जो भेद (५७) गिनाये हैं[10] वे द्रव्यसंग्रह-कार-द्वारा प्रतिपादित भावास्रवके भेदों (३२) से भिन्न हैं[12]। इसके अलावा, प्रथम नेमिचन्द्र दक्षिण भारतके

---

१. डा० ए० एन० उपाध्ये, अनेकान्त वर्ष ४, किरण १, पृ० ११३-१२०। तथा पं० जुगलकिशोर मुख्तार, पुरातन जैन वाक्य-सूचीकी प्रस्तावना पृ० ८९।
२. अनेकान्त वर्ष ४, किरण १।
३. वही।
४. पुरातन जैन वाक्यसूचीकी प्रस्तावना पृ० १९०।
५. द्रव्यसंग्रह, गाथा ५८।
६. गोम्मटसार-कर्मकाण्ड, गा० ३९७।
७. द्रव्यसंग्रह-संस्कृतटीका, पृ० २, ५, ५८ आदि।
८. कर्मकाण्ड, गाथा ४३६, ७८५, त्रिलोकसार गा० १०१८, लब्धिसार गा० ४४८।
९. बृ० द्रव्यसंग्रह, गा० ५८, लघुद्रव्यसं० गा० २५।
१०. मिच्छत्तं अविरमणं कसाय-जोगा य आसवा होंति।
पण बारस पणवीसं पण्णरसा होंति तब्भेया।।—गोम्म० कर्म०, गा० ७८६।
११. मिच्छत्ताविरदि-पमाद-जोग-कोहादओऽथ विण्णेया।
पण पण पणदस तिय चदु कमसो भेदा दु पुव्वस्स।।—द्रव्यसं०, गा० ३०।
१२. टीका पृ० ४, १०९, ११२, ११६, २०४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निवासी हैं और चतुर्थ नेमिचन्द्र उत्तर भारत (मालवा) के विद्वान् हैं। इन सब बातोंसे प्रथम नेमिचन्द्र और चतुर्थ नेमिचन्द्र एक व्यक्ति नहीं हैं—वे दोनों एक दूसरेसे पृथक् एवं स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखते हैं।

४. द्वितीय और तृतीय नेमिचन्द्र भी अभिन्न नहीं हैं, द्वितीय नेमिचन्द्र १२ वीं शताब्दीके विद्वान् हैं और तृतीय नेमिचन्द्र १६ वीं शतीमें हुए हैं और इसलिए इनमें लगभग चारसौ वर्षका पौर्वापर्य है।

५. तृतीय और चतुर्थ नेमिचन्द्र भी एक नहीं हैं। १३ वीं शताब्दी (वि० सं० १३००) के ग्रन्थकार पं० आशाधरजीने चौथे नेमिचन्द्रके द्रव्यसंग्रहके नामोल्लेखपूर्वक तथा बिना नामोल्लेखके उसकी अनेक गाथाओंको अनगारधर्मामृतकी स्वोपज्ञ-टीकामें उद्धृत किया है। अतः चौथे नेमिचन्द्र स्पष्टतया पं० आशाधर-जीके पूर्ववर्ती अर्थात् १३ वीं शताब्दीसे पहलेके हैं, जब कि तृतीय नेमिचन्द्र उनके उत्तरकालीन अर्थात् १६ वीं शतीमें हुए हैं।

(ग) द्रव्यसंग्रहके कर्त्ता नेमिचन्द्र

अब रह जाते हैं दूसरे और चौथे नेमिचन्द्र। सो ये दोनों विद्वान् निम्न आधारोंसे एक व्यक्ति ज्ञात होते हैं।

१. पं० आशाधरजी (वि० सं० १३००) ने वसुनन्दि सिद्धान्तिदेवका सागारधर्मामृत तथा अनगार-धर्मामृत दोनोंकी टीकाओंमें उल्लेख किया है[1] और वसुनन्दिने द्वितीय नेमिचन्द्रका अपने गुरुरूपसे स्मरण किया है[2] तथा उन्हें श्रीनन्दिका प्रशिष्य एवं नयनन्दिका शिष्य बतलाया है[3]। ये नयनन्दि यदि वे ही नयनन्दि हैं, जिन्होंने '**सुदंसणचरिउ**' की रचना की है और जिसे उन्होंने धारामें रहते हुए राजा भोजदेवके कालमें वि० सं० ११०० में पूर्ण किया है[4], तो द्वितीय नेमिचन्द्र नयनन्दिसे कुछ ही उत्तरवर्ती और वसुनन्दिसे कुछ पूर्ववर्ती अर्थात् वि० सं० ११२५के करीबके विद्वान् ठहरते हैं। उधर चौथे नेमिचन्द्र (द्रव्यसंग्रहकार) का भी समय पं० आशाधरजीके ग्रन्थोंमें उनका उल्लेख होने तथा ब्रह्मदेव द्वारा उनके द्रव्यसंग्रहकी टीका लिखी जानेसे उनसे पूर्ववर्ती अर्थात् वि० सं० की १२ वीं शताब्दी सिद्ध होता है। इसलिए बहुत सम्भव है कि ये दोनों नेमिचन्द्र एक हों।

२. वसुनन्दिने अपने गुरु नेमिचन्द्रको '**समस्त जगतमें विख्यात**' बतलाया है। उधर '**सुदंसणचरिउ**' के कर्त्ता नयनन्दि भी अपनेको '**जगत-विख्यात**' प्रकट करते हैं[5]। इससे ध्वनित होता है कि वसुनन्दिको अपने द्वारा नेमिचन्द्रके गुरुरूपसे उल्लिखित नयनन्दि वे ही नयनन्दि अभिप्रेत हैं जो '**सुदंसणचरिउ**' के कर्त्ता हैं और उन्हींके जगत-विख्यात जैसे गुणोंको वे उनके शिष्य और अपने गुरु (नेमिचन्द्र) में भी देख रहे हैं। इससे जान पड़ता है कि वसुनन्दिके उल्लिखित नयनन्दि और '**सुदंसणचरिउ**' के कर्त्ता नयनन्दि अभिन्न हैं

---

१. सा० ध० टी० ४-५२, अनगा० ध० टी० ५-६६, ८-३७ और ८-८८।

२. वसुनन्दिश्रावका०, गा० ५४३, ५४४।

३. वही, गा० ५४०, ५४२।

४. णिव-विक्कम-कालहो ववगएसु। एयारह-संवच्छर-सएसु॥
तहिं केवलि-चरिउ अमयच्छरेण। णयणंदी विरयउ वित्थरेण॥—सुदंसणचरिउ, अन्तिम प्रशस्ति।

५. पढम-सीसु तहो जायउ जगविक्खायउ मुणि णयणंदी····।
चरिउ सुदंसणणाहहो तेण अवाहहो विरइउ····।—सुदंसणचरिउ, अन्तिमप्रश० ४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा उन्हींके शिष्य नेमिचन्द्रका वसुनन्दिने अपने गुरुरूपसे स्मरण किया है और ये नेमिचन्द्र वे ही नेमिचन्द्र हो, जो द्रव्यसंग्रहके कर्त्ता हैं, तो कोई आश्चर्य नहीं है।

३. द्रव्यसंग्रहके संस्कृत-टीकाकार ब्रह्मदेवने द्रव्यसंग्रहकार नेमिचन्द्रका **'सिद्धान्तिदेव'** उपाधिके साथ अपनी संस्कृत-टीकाके मध्यमें तथा अधिकारोंके अन्तिम पुष्पिका-वाक्योंमें उल्लेख किया है[1]। उधर वसुनन्दि और उनके गुरु नेमिचन्द्र भी **'सिद्धान्तिदेव'** की उपाधिसे भूषित मिलते हैं[2]। अतः असम्भव नहीं कि ब्रह्मदेव के अभिप्रेत नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव और वसुनन्दिके गुरु नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव एक हों।

४. ब्रह्मदेवने द्रव्यसंग्रहके प्रथम अधिकारके अन्तमें और द्वितीय अधिकारसे पहले वसुनन्दि-श्रावकाचारकी दो गाथाएँ नं० २३ और नं० २४ उद्धृत करते हुए लिखा है[3] कि 'इसके आगे पूर्वोक्त छहों द्रव्योंका चूलिकारूपसे विशेष व्याख्यान किया जाता है। वह इस प्रकार है।' यह उत्थानिकावाक्य देकर उन दोनों गाथाओंको दिया गया है और द्रव्यसंग्रहकारकी गाथाओंकी तरह ही उनकी व्याख्या प्रस्तुत की है। व्याख्याके अन्तमें **'चूलिका'** शब्दका अर्थ बतलाते हुए लिखा है कि विशेष व्याख्यान, अथवा उक्तानुक्त व्याख्यान और उक्तानुक्त मिश्रित व्याख्यानका नाम चूलिका है।

आशय यह है कि ब्रह्मदेवने वसुनन्दिकी गाथाओं (नं० २३ व २४) को जिस ढंगसे यहाँ प्रस्तुत किया है और उनकी व्याख्या दी है, उससे विदित होता है कि वे वसुनन्दिके गुरु नेमिचन्द्रको ही द्रव्यसंग्रहका कर्त्ता मानते थे और इसीलिए वसुनन्दिकी उक्त विशिष्ट गाथाओं और अपनी व्याख्याद्वारा उनके गुरु (नेमिचन्द्र-द्रव्यसंग्रहकार) के संक्षिप्त कथनका उन्होंने विस्तार किया है। और यह कोई असंगत भी नहीं है, क्योंकि गुरुके हृदयस्थ अभिप्रायका जितना जानकार एवं उद्घाटक साक्षात्-शिष्य हो सकता है उतना प्रायः अन्य नहीं। उक्त गाथाओंकी ब्रह्मदेवने उसी प्रकार व्याख्या की है जिस प्रकार उन्होंने द्रव्यसंग्रहकी समस्त गाथाओंकी की है। स्मरण रहे कि ब्रह्मदेवने अन्य आचार्योंके भी बीसियों उद्धरण दिये हैं, पर उनमेंसे उन्होंने किसी भी उद्धरणकी ऐसी व्याख्या नहीं की और न इस तरहसे उन्हें उपस्थित किया है—उन्हें तो उन्होंने **'तदुक्तं'**, **'तथा चोक्तं'** जैसे शब्दोंके साथ उद्धृत किया है। जब कि वसुनन्दिकी उक्त गाथाओंको द्रव्यसंग्रहकारकी गाथाओंकी तरह **'अतः परं पूर्वोक्तद्रव्याणां चूलिकारूपेण विस्तर-व्याख्यानं क्रियते। तद्यथा—'** जैसे उत्थानिका-वाक्यके साथ दिया है। अतः ब्रह्मदेवके उपर्युक्त प्रतिपादनपरसे यह निष्कर्ष सहज ही निकला जा सकता है कि उन्हें वसुनन्दिके गुरु नेमिचन्द्र ही द्रव्यसंग्रहके कर्त्ता अभीष्ट हैं—वे उन्हें उनसे भिन्न व्यक्ति नहीं मानते हैं।

---

१. ·····श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवैः पूर्वं···'—पृ० २। '·····तिष्ठन्तीत्यभिप्रायो भगवतां श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवानामिति।'—पृ० ५८। 'इति श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवविरचिते द्रव्यसंग्रहग्रन्थे·····प्रथमोऽधिकारः समाप्तः।' 'इति श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवविरचिते द्रव्यसंग्रहग्रन्थे····द्वितीयोऽधिकारः समाप्त।' 'इति····श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवैर्विरचितस्य द्रव्यसंग्रहाभिधानग्रन्थस्य····श्रीब्रह्मदेवकृतवृत्तिः समाप्तः।' —पृ० २४१।

२. आशाधर, सा० ध० टी०, ४-५२; अनगा० ध० टी०, ८-८८।

३. बृहद्द्रव्यसंग्रह-संस्कृतटीका पृ० ७६।

४. बृहद्द्रव्यसंग्रह-संस्कृतटीका, पृ० ८०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस तरह उपर्युक्त आधारोंसे द्रव्यसंग्रहके कर्त्ता मुनि नेमिचन्द्र वे ही नेमिचन्द्र ज्ञात होते हैं, जो वसुनन्दि सिद्धान्तिदेवके गुरु और नयनन्दि सिद्धान्तिदेव (सिद्धान्तपारंगत)[1] के शिष्य हैं। सम्भवतः इसीसे —गुरु-शिष्योंको **'सिद्धान्तिदेव'** होनेसे—ब्रह्मदेव उन्हें (द्रव्यसंग्रहकार मुनि नेमिचन्द्रको) भी **'सिद्धान्तिदेव'** मानते और उल्लिखित करते हुए देखे जाते हैं। इसके प्रचुर प्रमाण उनकी द्रव्यसंग्रहवृत्तिमें उपलब्ध हैं।

(घ) समय :

हम ऊपर कह आये हैं कि नयनन्दिने अपना **'सुदंसणचरिउ'** विक्रम सं० ११०० में पूर्ण किया है। अतः नयनन्दिका अस्तित्व-समय वि० सं० ११०० है। यदि उनके शिष्य नेमिचन्द्रको उनसे अधिक-से-अधिक २५ वर्ष पीछे माना जाय तो वे लगभग वि० सं० ११२५ के ठहरते हैं। उधर इनके शिष्य वसुनन्दिका समय विक्रमकी १२ वीं शताब्दीका पूर्वार्ध अर्थात् वि० सं० ११५० माना जाता है[2], जो उचित है। इससे भी नयनन्दि (वि० सं० ११००) और वसुनन्दि (वि० सं० ११५०) के मध्य होनेवाले इन नेमिचन्द्रका समय विक्रम सं० ११२५ के आस-पास होना चाहिए।

(ङ) गुरु-शिष्य :

यद्यपि द्रव्यसंग्रहकारने न अपने किसी गुरुका उल्लेख किया है और न किसी शिष्यका। उनके उपलब्ध लघु और बृहद् दोनों द्रव्यसंग्रहोंमें उन्होंने अपना नाममात्र दिया है। इतना विशेष है कि लघु-द्रव्यसंग्रहमें उसकी रचनाका निमित्त भी बताया है[3]। और वह है सोम (राजश्रेष्ठी)। उन्हींके बहानेसे भव्यजीवोंके कल्याणार्थ उन्होंने उसे रचा है। फिर भी वसुनन्दिके उल्लेखानुसार उनके गुरु नयनन्दि हैं और दादा गुरु श्रीनन्दि[4]। वसुनन्दि उनके साक्षात्शिष्य हैं। वसुनन्दिने अपना **'उपासकाध्ययन'**, जो अर्थतः आचार्यपरम्परासे आगत था, शब्दतः उन्हींसे सिद्धान्तका अध्ययन करके उनके प्रसादसे पूरा किया था[5]। ग्रन्थकारके और भी शिष्य रहे होंगे, पर उनके जाननेका अभी तक कोई साधन प्राप्त नहीं है।

(च) प्रभाव :

यों तो ग्रंथकारने स्वयं अपना कोई परिचय नहीं दिया, जिससे उनके प्रभावादिका पता चलता, तथापि उत्तरवर्ती ग्रंथकारोंद्वारा उनका स्मरण किया जाना और **'भगवान्'** जैसे सम्मानसूचक शब्दोंके साथ उनके द्रव्यसंग्रहकी गाथाओंका उद्धरण देना आदि बातोंसे उनके प्रभावका पता चलता है[6]। वसुनन्दि सिद्धान्तिदेव तो उन्हें **'जिनागमरूपी समुद्रकी वेला-तरंगोंसे धुले हृदयवाला'** तथा **'समस्त जगतमें विख्यात'** बतलाते हैं। इससे वे तत्कालीन विद्वानोंमें निश्चय ही एक प्रभावशाली एवं सिद्धान्तवेत्ता विद्वान् रहे होंगे, यह स्पष्ट ज्ञात होता है।

---

१. वसुनन्दि, उपासकाध्ययन गा० ५४२।

२. पं० जुगलकिशोर मुख्तार, पुरातन जैन वाक्य-सूची, प्रस्तावना पृ० १००।

३. सोमच्छलेण रइया पयत्थलक्खणकराउ गाहाओ।
भव्वुवयार-णिमित्तं गणिणा सिरिणेमिचंदेण ॥—लघुद्रव्यसं० गा० २५।

४. वसुनन्दिसिद्धान्तिदेव, उपासकाध्ययन गा० ५४०, ५४१, ५४२।

५. वही, गा० ५४४।

६. ब्रह्मदेव, द्रव्यसंग्रह-संस्कृतटीका, पृ० ५८, १४९, २२९। तथा आशाधर, अनगारधर्मामृतटीका पृ० ४, १०९, ११६, ११८। और जयसेन, पञ्चास्तिकाय-तात्पर्यवृत्ति पृ० ६, ७, १६३, १८६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(छ) स्थान :

ब्रह्मदेवके[१] उल्लेखानुसार ग्रन्थकारने अपने दोनों द्रव्यसंग्रहोंकी रचना **'आश्रम'** नामक नगरके श्रीमुनिसुव्रततीर्थंकरचैत्यालयमें रहते हुए की थी। यह **'आश्रम'** नगर उस समय मालवाके अन्तर्गत था और मालवासम्राट् धाराधिपति परमारवंशी भोजदेवके प्रान्तीय-प्रशासक परमारवंशीय श्रीपालद्वारा वह प्रशासित था। **'सोम'** नामक राजश्रेष्ठी उनका प्रभावशाली एवं विश्वसनीय अधिकारी था, जिसके अधिकारमें खजाना आदि कई महत्त्वपूर्ण विभाग थे। इन सोमश्रेष्ठीके अनुरोधपर ही श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेवने पहले २६ गाथात्मक पदार्थलक्षणरूप **'लघुद्रव्यसंग्रह'** और फिर पीछे विशेष तत्त्वज्ञानके लिए **'बृहद्द्रव्यसंग्रह'** रचा था। ब्रह्मदेवने अपने इस उल्लेखमें सोमश्रेष्ठीको **'परम आध्यात्मिक भव्योत्तम'** बताया है, जिससे सोमश्रेष्ठीकी उत्कट आध्यात्मिक-जिज्ञासाका परिचय मिलता है। इसी उल्लेखसे जहाँ यह भी ज्ञात होता है कि उक्त **'आश्रम'** नेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवके स्थायी अथवा अस्थायी निवासके रूपमें विश्रुत था, और सोमश्रेष्ठी जैसे आध्यात्मिक सुधारसपिपासु वहाँ पहुँचते थे, वहाँ इस पावन स्थानका महत्त्व भी प्रकट होता है। लगता है कि उन दिनों जैन परम्परामें इस स्थानकी प्रसिद्धि एवं मान्यता वहाँके उक्त चैत्यालयमें प्रतिष्ठित बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथकी सातिशय, मनोज्ञ एवं आकर्षक प्रतिमाके कारण रही है। मूर्तिके इस अतिशयका उल्लेख मुनि मदनकीर्तिने शासनचतुस्त्रिंशिका (पद्य २८), निर्वाणकाण्डकारने प्राकृत-निर्वाणकाण्ड (गा० २०) और मुनि उदयकीर्तिने अपभ्रंश-निर्वाणभक्ति (गा० ६) में भी किया है। इन उल्लेखोंसे स्पष्ट जान पड़ता है कि उक्त **'आश्रम'** नगर एक प्रसिद्ध और पावन दिगम्बर तीर्थस्थान रहा है।

इस स्थानकी वर्तमान स्थितिके बारेमें पं० दीपचन्द्रजी पाण्डया[२] और डा० दशरथ शर्माने[3] ऊहापोह एवं प्रमाणपूर्वक विचार करते हुए लिखा है कि **'आश्रम'** नगर, जिसे साहित्यकारोंने आश्रम[४], आशारम्यपट्टण[५], आश्रमपत्तन[६], पट्टण[७] और पुटभेदनके[८] नामसे उल्लेखित किया है[९], राजस्थानके अन्तर्गत कोटासे उत्तरपूर्वकी

---

१. 'अथ मालवदेशे धारानामनगराधिपतिभोजदेवाभिधानकलिकालचक्रवर्तिसम्बन्धिनः श्रीपालमण्डलेश्वरस्य सम्बन्धिन्याश्रमनामनगरे श्रीमुनिसुव्रततीर्थंकरचैत्यालये शुद्धात्मद्रव्यसंवित्तिसमुत्पन्नसुखामृतरसास्वाद-विपरीतनारकादिदुःखभयभीतस्य परमात्मभावनोत्पन्नसुखसुधारसपिपासितस्य भेदाभेदरत्नत्रयभावना-प्रियस्य भव्यवरपुण्डरीकस्य भाण्डागाराद्यनेकनियोगाधिकारिसोमाभिधानराजश्रेष्ठिनो निमित्तं श्रीनेमि-चन्द्रसिद्धान्तिदेवैः पूर्वं षड्विंशतिगाथाभिर्लघुद्रव्यसंग्रहं कृत्वा पश्चाद्विशेषतत्त्वज्ञानार्थं विरचितस्य बृहद्द्रव्यसंग्रहस्याधिकारशुद्धिपूर्वकत्वेन वृत्तिः प्रारभ्यते।'—ब्रह्मदेव, बृहद्द्रव्यसं० वृत्ति, पृ० १-२।

२. 'क्या पाटण-केशोराय ही प्राचीन आश्रमनगर है ?' शीर्षक लेख, वीरवाणी (स्मारिका) वर्ष १८, अंक १३, पृ० १०९।

३. 'आश्रमपत्तन ही केशोराय पट्टन है' शीर्षक निबन्ध, अनेकान्त (छोटेलाल स्मृति अंक) वर्ष १९, कि० १-२, पृ० ७०।

४. मदनकीर्ति, शासनचतुस्त्रिंशिका पद्य २८ तथा उदयकीर्ति अपभ्रंशनिर्वाणभक्ति गा० ६।

५. निर्वाणकाण्ड गा० २०।

६. नयचन्द्रसूरि, हम्मीरकाव्य ८-१०६।

७, ८. चन्द्रशेखर, सुर्जनचरितमहाकाव्य ११-२२, ३९।

९. जल और स्थल मार्गोंसे व्यापार करनेवाले नदी-किनारे स्थित नगरको पुटभेदन और मुख्यतः बन्दरगाह-को पत्तन या पट्टन कहा जाता है, चाहे वह समुद्रतटपर हो या नदी-तटपर। आश्रमनगरके लिए ये दोनों शब्द प्रयुक्त हो सकते हैं; क्योंकि वह चम्बलके किनारे स्थित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओर लगभग ९ मीलकी दूरीपर और बूँदीसे लगभग ३ मील दूर चर्मण्वती (चम्बल) नदीपर अवस्थित वर्तमान **'केशोराय पाटण'** अथवा **'पाटण केशोराय'** ही है। प्राचीन कालमें यह राजा भोजदेवके परमार-साम्राज्यके अन्तर्गत मालवामें रहा है। निसर्गरमणीय यह स्थान आश्रम-भूमि (तपोवन) के उपयुक्त होनेके कारण वास्तवमें **'आश्रम'** कहलानेका अधिकारी है। नदीके किनारे होनेसे यह बड़ा भव्य, शान्त और मनोज्ञ है। इसकी प्राकृतिक सुषमा बहुत ही आकर्षक है। सम्भवतः इसी कारण यह जैनों (दिगम्बरों) के अतिरिक्त हिन्दुओंका भी तीर्थ है। दिगम्बर-साहित्यमें इसके दिगम्बर तीर्थ होनेके प्रचुर उल्लेख विक्रमकी १२वीं १३वीं शताब्दीसे मिलते हैं और जैनेतर-साहित्यमें इसके हिन्दू तीर्थ होनेके निर्देश विक्रमकी १५वीं-१६वीं शताब्दीसे उपलब्ध होते हैं। पाण्डयाजीके कथनानुसार आज भी वहाँ (पाटण केशाराय कस्बामें) चम्बल नदीके किनारे बहुत विशाल लगभग ४० फुट ऊँचा भव्य जैन मन्दिर है। मन्दिरका एक भाग सुदृढ़ नीव है, जिससे मन्दिरको पानीसे कभी क्षति न पहुँचे। दूसरे भागमें शाला, कोठे आदि बने हुए हैं, जहाँ बहुसंख्यामें बाहरसे यात्री आते व ठहरते हैं और दर्शन, पूजन करके मनोरथ पूरा होने हेतु गण-भोज भी किया करते हैं। श्रीमुनिसुव्रतकी दिगम्बरीय प्रतिमा मन्दिरके ऊपरी भागमें भूगर्भमें विराजमान है। पृथ्वीतलसे नीचे होनेके कारण जनता इस प्राचीन मन्दिरको **'भुई देवरा'** (भौंयरा) कहती है।[1] डा० शर्माके सूचनानुसार रणथंभोरके राजा हठीले हम्मीरके पिता जैसिंहने पुत्रको राज्य देकर **आश्रमपत्तन**के पवित्र तीर्थके लिए प्रयाण किया था[2]। तथा रणथंभोरेश्वर हम्मीरने राजधानीमें यज्ञ न कर इसी महान् तीर्थपर आकर **'कोटिमख'** किया था[3]। किन्तु प्रतीत होता है कि १६वीं शताब्दीकी जनता इसे आश्रमपत्तन या आश्रमनगर न कहकर पत्तन या पट्टन या पुटभेदन कहने लगी थी[4]।

इस तरह आश्रमनगर[5] जैनोंके साथ हिन्दुओंका भी पावन तीर्थस्थान है। श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव-ने ऐसे महत्त्वपूर्ण एवं प्राकृतिक सुषमासे सम्पन्न शान्त स्थानको साहित्य-सृजन, ज्ञानाराधन और ध्यान आदिके लिए चुना हो, तो कोई आश्चर्य नहीं है।

(ज) रचनाएँ

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है कि श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेवकी दो ही रचनाएँ उपलब्ध हैं—एक लघुद्रव्यसंग्रह और दूसरी बृहद्द्रव्यसंग्रह। इन दोके अलावा उनकी और कोई कृति प्राप्त नहीं है। उनके प्रभावको

---

१. डा० शर्माके उल्लिखित लेखमें उद्धृत 'आर्कीएलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डियाकी १९०४-५ की प्रोग्रेस रिपोर्ट।

२. नयचन्द्रसूरि, हम्मीरमहाकाव्य ८–१०६।

३. चन्द्रशेखर, सुर्जनचरितमहाकाव्य ११–५८।

४. वही, ११–२२।

५. सन् १९४९में मदनकीर्तिकी शासनचतुस्त्रिंशिकाके सम्पादन-समय उसके उल्लेख (पद्य २८)में आये आश्रम पदसे आश्रमनगरकी ओर मेरा ध्यान नहीं गया था और उसके तृतीय चरणमें विद्यमान 'विप्रजनाव-रोधनगरे' शब्दोंपरसे अवरोधनगरकी कल्पना की थी, जो ठीक नहीं थी। वहाँ 'आश्रम' से आश्रमनगर मदनकीर्तिको इष्ट है, इसकी ओर हमारा ध्यान पं० दीपचन्द्रजी पांड्याके उस लेखने आकर्षित किया है, जो उन्होंने वीरवाणी (स्मारिका) वर्ष १८, अंक १३ में प्रकाशित किया है और जिसका जिक्र ऊपर किया गया है। इसके लिए हम उनके आभारी हैं।—लेखक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देखते हुए यह सम्भावना अवश्य की जा सकती है कि उनने और भी कृतियोंका निर्माण किया होगा, जो या तो लुप्त हो गई या शास्त्रभण्डारोंमें अज्ञात दशामें पड़ी होंगी।

(झ) ब्रह्मदेव

ब्रह्मदेव श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेवके बृहद्द्रव्यसंग्रहके संस्कृत-टीकाकार हैं और वे उनके ग्रन्थोंसे बहुत परिचित एवं प्रभावित मालूम पड़ते हैं। अतः उनके व्यक्तित्व, कृतित्व और समयके सम्बन्धमें भी यहाँ विचार करना अनुचित न होगा।

(१) व्यक्तित्व

श्रीब्रह्मदेवकी रचनाओंपरसे उनके व्यक्तित्वका अच्छा परिचय मिलता है। वे प्राकृत, अपभ्रंश और संस्कृत तीनों भाषाओंके पण्डित थे और तीनोंमें उनका अबाध प्रवेश दिखाई देता है। वे अध्यात्मकी चर्चा करते हुए उसके रसमें स्वयं तो निमग्न होते ही हैं, किन्तु पाठकोंको भी उसमें तन्मय कर देनेकी क्षमता रखते हैं।[1] इससे वे स्पष्टतया आध्यात्मिक विद्वान् जान पड़ते हैं। लेकिन इससे यह न समझ लिया जाय कि वे केवल आध्यात्मिक ही विद्वान् थे। वरन् द्रव्यानुयोगकी चर्चाके साथ प्रथमानुयोग, करणानुयोग और चरणानुयोगके बीसियों ग्रन्थोंके उद्धरण देकर वे अपना चारों अनुयोगोंका पाण्डित्य एवं बहुश्रुतत्व भी ख्यापित करते हैं। पंचास्तिकायकी तात्पर्यवृत्तिमें जयसेनने और परमात्मप्रकाशकी कन्नड-टीकामें मलधारी बालचन्द्रने उनका पूरा अनुकरण किया है। पदच्छेद, उत्थानिका, अधिकारों और अन्तराधिकारोंकी कल्पना इन दोनों विद्वानोंने ब्रह्मदेवसे ली है। शब्दसाम्य और अर्थसाम्य तो अनेकत्र है। समयका विचार करते समय हम आगे दिखायेंगे कि जयसेनका अनुकरण ब्रह्मदेवने नहीं किया, अपितु ब्रह्मदेवका जयसेनने किया है।

(२) कृतित्व

ब्रह्मदेवकी निम्न रचनाएँ मानी जाती हैं :—

१. परमात्मप्रकाशवृत्ति, २. बृहद्द्रव्यसंग्रहवृत्ति, ३. तत्त्वदीपक, ४. ज्ञानदीपक, ५. त्रिवर्णाचार-दीपक, ६. प्रतिष्ठातिलक, ७. विवाहपटल और ८. कथाकोश।

परन्तु डा० ए० एन० उपाध्ये उनकी दो ही प्रामाणिक रचनाएँ बतलाते हैं[2]—एक परमात्मप्रकाश-वृति और दूसरी बृहद्द्रव्यसंग्रहवृत्ति।

१. परमात्मप्रकाशवृत्ति—परमात्मप्रकाशवृत्ति (परमप्पयासु) श्री योगीन्द्रदेवकी अपभ्रंशमें रची महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमें आत्मा ही परमात्मा है, इसपर प्रकाश डाला गया है। ब्रह्मदेवने इसीपर संस्कृतमें अपनी वृत्ति लिखी है, जिसे उन्होंने स्वयं '**परमात्मप्रकाशवृत्ति**' कहा है[3]। आध्यात्मिक पद्धति, पदच्छेद, उत्थानिका, सन्धिकी यथेच्छता, अधिकारों और अन्तराधिकारोंकी कल्पना ये सब बृहद्द्रव्यसंग्रहवृत्तिकी तरह इसमें भी हैं। भाषा सरल और सुबोध है।

(२) बृहद्द्रव्यसंग्रहवृत्ति—इसका परिचय इसी प्रस्तावनामें पृष्ठ २३ पर दिया जा चुका है।

---

१. परमात्मप्रकाशवृत्ति (नई आवृत्ति), १-२१४, पृ० ३५१।

२. परमात्मप्रकाश (नई आवृत्ति), हिन्दी प्रस्तावना पृ० ११६।

३. ....सूत्राणां विवरणभूता परमात्मप्रकाशवृत्तिः समाप्ता।'—डा० उपाध्ये, परमात्मप्रकाश अ० २-२१४, पृ० ३५०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३) समय :

(१) ब्रह्मदेवने वसुनन्दिके उपासकाध्ययनसे दो गाथाएँ (नं० २३ व २४) बृहद्द्रव्यसंग्रहवृत्ति (पृ० ७६) में उद्धृत की हैं और उनका विस्तृत व्याख्यान किया है। वसुनन्दिका समय विक्रम सं० ११५० है। अतः ब्रह्मदेव वसुनन्दि वि० ११५०) से पूर्ववर्ती नहीं है—उनके उत्तरवर्ती हैं।

(२) पं० आशाधरजी (वि० सं० १२९६) ने अपने सागारधर्मामृत (१–१३) में ब्रह्मदेवकी बृहद्द्रव्यसंग्रहवृत्ति (पृ० ३३–३४) का अनुकरण किया है और उनके '**तलवरगृहीततस्कर**' का उदाहरण ही नहीं अपनाया, अपितु उनके शब्दों और भावोंको भी अपनाया है।[1] अतएव ब्रह्मदेव पं० आशाधरजी (वि० सं० १२९६) से पूर्ववर्ती हैं।

(३) ब्रह्मदेवने सम्यग्दृष्टिके पुण्य और पाप दोनोंको हेय बतलाते हुए दृष्टान्तके साथ जो इस विषय की गद्य दी है उसका अनुकरण जयसेनने पञ्चास्तिकायकी तात्पर्यवृत्तिमें किया है। इसके कई आधार हैं। पहले, जयसेनने यहाँ ब्रह्मदेवके दृष्टान्तको तो लिया ही है, उनके शब्दों और भावोंको भी अपनाया है।[2]

---

१. तुलना कीजिए :—

(क) ' निजपरमात्मद्रव्यमुपादेयम्, इन्द्रियसुखादिपरद्रव्यं हि हेयमित्यर्हत्सर्वज्ञप्रणीतनिश्चयव्यवहारनयसाध्यसाधकभावेन मन्यते परं किन्तु भूरेखादिसदृशक्रोधादिद्वितीयकषायोदयेन मारणनिमित्तं तलवरगृहीततस्करवदात्मनिन्दासहितः सन्निन्द्रियसुखमनुभवतीत्यविरतसम्यग्दृष्टेर्लक्षणम्।

—ब्रह्मदेव, बृ० द्र० वृ०, पृ० ३३–३४।

(ख) भूरेखादिसदृक्कषायवशगो यो विश्वदृश्वाज्ञया,
हेयं वैषयिकं सुखं निजमुपादेयं त्विति श्रद्दधत्।
चौरो मारयितुं धृतस्तलवरेणेवात्मनिन्दादिमान्,
शर्माक्षं भजते रुजत्यपि परं नोत्तप्यते सोऽप्यघैः॥

—आशाधर, सागारधर्मामृत, १–१३।

२. (क) यथा कोऽपि देशान्तरस्थमनोहरस्त्रीसमीपादागतपुरुषाणां तदर्थं दानसन्मानादिकं करोति तथा सम्यग्दृष्टिरप्युपादेयरूपेण स्वशुद्धात्मानमेव भावयति····निर्दोषपरमात्मस्वरूपाणामर्हत्सिद्धानां तदाराधकाचार्योपाध्यायसाधूनां च परमात्मपदप्राप्त्यर्थं विषयकषायवर्जनार्थं च दानपूजादिना····परमभक्तिं करोति····तेन च स्वर्गे देवेन्द्रलौकान्तिकादिविभूतिं प्राप्य विमानपरीवारादिसंपदं जीर्णतृणमिव गणयन् पञ्चमहाविदेहेषु गत्वा पश्यति। किं पश्यति, इति चेत्—तदिदं समवसरणं, त एते वीतरागसर्वज्ञाः, त एते भेदाभेदरत्नत्रयाराधका गणधरदेवादयो ये पूर्वं श्रूयन्ते····इति मत्वा विशेषेण दृढधर्ममतिर्भूत्वा चतुर्थगुणस्थानयोग्यामात्मनोऽविरतावस्थामपरित्यजन् भोगानुभवेऽपि सति धर्मध्यानेन कालं नीत्वा स्वर्गादागत्य तीर्थंकरादिपदे प्राप्तेऽपि पूर्वभवभावितविशिष्टभेदज्ञानवासनाबलेन मोहं न करोति, ततो जिनदीक्षां गृहीत्वा पुण्यपापरहितनिजपरमात्मध्यानेन मोक्षं गच्छतीति।'

—बृह० द्र० वृ०, पृ० १५९–१६०।

(ख) 'यथा कोऽपि रामदेवादिपुरुषो देशान्तरस्थसीतादिस्त्रीसमीपादागतानां पुरुषाणां तदर्थं दानसन्मानादिकं करोति तथा मुक्तिस्त्रीवशीकरणार्थं निर्दोषपरमात्मनां तीर्थकरपरमदेवानां तथैव गणधरदेवभरतसगररामपाण्डवादिमहापुरुषाणां चाशुभरागवर्जनार्थं शुभधर्मानुरागेण चरितपुराणादिकं शृणोति भेदाभेदरत्नत्रयभावनारतानामाचार्योपाध्यायादीनां गृहस्थावस्थायां च पुनर्दानपूजादिकं करोति च तेन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरे, जयसेनने अपने ढंगसे मामूली परिवर्तन (घटा-बढ़ीरूप सुधार) भी किया है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि किसने किसका अनुकरण किया है। उदाहरणके लिए ब्रह्मदेवका '**देशान्तरस्थस्त्री**'—का दृष्टान्त लीजिए। इसमें जयसेनने 'सीतादि' पद और जोड़कर '**देशान्तरस्थसीतादिस्त्री**' का दृष्टान्त दिया है। इसी तरह ब्रह्मदेवके '**कोऽपि**' पदके साथ '**रामदेवादिपुरुषो**' और मिलाकर '**कोऽपि रामदेवादिपुरुषो**' ऐसा व्याख्यात्मक पद जयसेनने प्रस्तुत किया है। इस ढंगके सुधार और परिवर्तन उत्तरवर्ती ही करता है और इसलिए यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि जयसेनने ब्रह्मदेवका अनुकरण किया है। तीसरे, पदच्छेद, उत्थानिका, अधिकारों और अन्तराधिकारोंकी कल्पना जयसेनने ब्रह्मदेवसे ली है। चौथे, जयसेनने पंचास्तिकायमें व्याख्याका ढंग वही अपनाया है, जो ब्रह्मदेवने द्रव्यसंग्रह और परमात्मप्रकाशमें अपनाया है। सन्धि न करनेका जो '**सुखबोधार्थं**' हेतु ब्रह्मदेवने प्रस्तुत किया है वही जयसेनने दिया है। पाँचवें, जयसेनने अपने निमित्त-कथनका समर्थन ब्रह्मदेव-निमित्त-कथनसे किया है और '**अत्र प्राभृतग्रन्थे शिवकुमार महाराजो निमित्तं, अन्यत्र द्रव्यसंग्रहादौ सोमश्रेष्ठ्यादि ज्ञातव्यम्**' शब्दोंको देकर तो उन्होंने स्पष्टतया ब्रह्मदेवके अनुकरणको प्रमाणित कर दिया है। इस प्रकार दोनों टीकाकारोंकी टीकाओंके आभ्यन्तर परीक्षणसे जयसेन निश्चय ही ब्रह्मदेवके उत्तरकालीन विद्वान् ज्ञात होते हैं। जयसेनका समय डा० ए० एन० उपाध्येने ईसाकी बारहवीं शताब्दीका उत्तरार्ध निर्धारित किया है। ब्रह्मदेव उक्त आधारोंसे उनसे पूर्ववर्ती सिद्ध होनेसे उनका अस्तित्व-समय ईसाकी बारहवीं शताब्दीका आरम्भ और विक्रमकी १२ वीं शताब्दीका उत्तरार्द्ध (वि० सं० ११५० से १२००) ज्ञात होता है।

इस तरह ब्रह्मदेव वसुनन्दि (वि० सं० ११५०) से उत्तरवर्ती और जयसेन (वि० सं० १२१७) तथा पं० आशाधर (वि० सं० १२९६) से पूर्ववर्ती अर्थात् वि० सं० ११५० से वि० सं० १२०० के विद्वान् प्रतीत होते हैं।

पं० परमानन्दजी शास्त्रीने ब्रह्मदेव, द्रव्यसंग्रहकार मुनि नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव और राजा भोजदेव इन तीनोंको समकालीन बतलाया है[1]। परन्तु हम ऊपर देख चुके हैं कि ब्रह्मदेव वसुनन्दि (वि०सं० ११५०) से पूर्ववर्ती नहीं है और नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव वसुनन्दिके साक्षात् गुरु होनेसे उन्हें उनसे २५ वर्ष पूर्व तो होना ही चाहिए अर्थात् नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेवका समय वि० सं० ११२५ के लगभग है। राजा भोजदेव नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेवके गुरु नयनन्दि (वि० सं० ११००) द्वारा अपने समयमें उनके राज्यका उल्लेख होनेसे उनके समकालीन हैं। अतः इन तीनोंका समय एक प्रतीत नहीं होता। राजा भोजका वि० सं० ११०० (वि० १०७४-१११७), नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेवका वि० सं० ११२५ और ब्रह्मदेवका वि० सं० ११७५ अस्तित्व-समय सिद्ध होता है।

कारणेन ·· पुण्यास्रवपरिणामसहितत्वात्तद्भवे निर्वाणं न लभते भवान्तरे पुनर्देवेन्द्रादिपदं लभते। तत्र विमानपरीवारादिविभूतिं तृणवद्गणयन् सन् पञ्चमहाविदेहेषु गत्वा समवसरणे वीतरागसर्वज्ञान् पश्यति। निर्दोषपरमात्माराधकगणधरदेवादीनां च तदनन्तरं विशेषेण दृढधर्मो भूत्वा चतुर्थगुणस्थानयोग्यामात्मभावनामपरित्यजन सन् देवलोके कालं गमयति। ततोऽपि जीवितान्ते स्वर्गादागत्य मनुष्यभवे चक्रवर्त्यादिविभूतिं लब्ध्वापि पूर्वभवभावितशुद्धात्मभावनाबलेन मोहं न करोति, ततश्च विषयसुखं परिहृत्य जिनदीक्षां गृहीत्वा····निजशुद्धात्मनि स्थित्वा मोक्षं गच्छतीति।'—पंचास्तिकायतातपर्य वृ०, पृ० २४३-४४।

१. 'द्रव्यसंग्रहके कर्ता और टीकाकारके समयपर विचार' शीर्षक लेख, अनेकान्त (छोटेलाल जैन स्मृति अंक) पृ० १४५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वचनिकाकार पं० जयचंदजी :

अब वचनिकाकार पं० **जयचन्दजी**के सम्बन्धमें विचार किया जाता है।

(१) परिचय :

पं० **जयचन्दजी**ने स्वयं अपना कुछ परिचय सर्वार्थसिद्धि-वचनिकाकी अन्तिम प्रशस्तिमें दिया है।[1] उससे ज्ञात है कि वे राजस्थान प्रदेशके अन्तर्गत **जयपुरसे** तीस मीलकी दूरीपर डिग्गीमालपुरा रोडपर स्थित **'फागई'** (फागी) ग्राममें पैदा हुए थे। इनके पिताका नाम **मोतीराम** था, जो **'पटवारी'**का कार्य करते थे। इनकी जाति खण्डेलवाल और गोत्र छावड़ा था। श्रावक (जैन) धर्मके अनुयायी थे। परिवारमें शुभ क्रियाओं-का पालन होता था। परन्तु स्वयं ग्यारह वर्षकी अवस्था तक जिनमार्गको भूले रहे और जब ग्यारह वर्षके पूरे हुए, तो जिनमार्गको जाननेका ध्यान आया। इसे उन्होंने अपना इष्ट और शुभोदय समझा। उसी ग्राममें एक दूसरा जिनमन्दिर था, जिसमें तेरापंथकी शैली थी और लोग देव, धर्म तथा गुरुकी श्रद्धा-उत्पादक कथा (वचनिका—तत्त्वचर्चा) किया करते थे। पं० जयचन्दजी भी अपना हित जानकर वहाँ जाने लगे और चर्चा-वार्तामें रस लेने लगे। इससे वहाँ उनकी श्रद्धा दृढ़ हो गई और सब मिथ्या बुद्धि छूट गई। कुछ समय बाद वे निमित्त पाकर **फागईसे जयपुर** आ गये। वहाँ तत्त्व-चर्चा करनेवालोंकी उन्होंने बहुत बड़ी शैली देखी, जो उन्हें अधिक रुचिकर लगी। उस समय वहाँ गुणियों, साधर्मीजनों और ज्ञानी पण्डितोंका अच्छा

---

१. काल अनादि भ्रमत संसार, पायो नरभव मैं सुखकार।
जन्म फागई लयौ सुथानि, मोतीराम पिताके आनि ॥११॥
पायौ नाम तहाँ जयचन्द, यह परजायतणूं मकरन्द।
द्रव्यदृष्टि मैं देखूँ जबै, मेरा नाम आतमा कबै ॥१२॥
गोत छावड़ा श्रावक धर्म, जामें भली क्रिया शुभ कर्म।
ग्यारह वर्ष अवस्था भई, तब जिनमारगकी सुधि लही ॥१३॥
आन इष्टको ध्यान अयोगि, अपने इष्ट चलन शुभ जोगि।
तहाँ दूजौ मन्दिर जिनराज, तेरापंथ पंथ तहाँ साज ॥१४॥
देव-धर्म-गुरु सरधा कथा, होय जहाँ जन भाषैं यथा।
तब मो मन उमग्यो तहाँ चलो, जो अपनो करनो है भलो ॥१५॥
जाय तहाँ श्रद्धा दृढ़ करी, मिथ्याबुद्धि सबै परिहरी।
निमित्त पाय जयपुरमें आय, बड़ी जु शैली देखी भाय ॥१६॥
गुणीलोक साधर्मी भले, ज्ञानी पंडित बहुते मिले।
पहले थे वंशीधर नाम, धरैं प्रभाव भाव शुभ ठाम ॥१७॥
टोडरमल पंडित मति खरी, गोमटसार वचनिका करी।
ताकी महिमा सब जन करैं, वाचै पढैं बुद्धि विस्तरैं ॥१८॥
दौलतराम गुणी अधिकाय, पंडितराय राजमैं जाय।
ताकी बुद्धि लसै सब खरी, तीन पुराण वचनिका करी ॥१९॥
रायमल्ल त्यागी गृहवास, महाराम व्रतशील-निवास।
मैं हूँ इनकी संगति ठानि, बुधिसारू जिनवाणी जानि ॥२०॥

—सर्वार्थसिद्धिवचनिका, अन्तिम प्रशस्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समुदाय था। उसमें पंडित **वंशीधर**जी उनसे पहले हो चुके थे, जो बड़े प्रभावशाली तथा अच्छे विचारवाद् थे। पंडित **टोडरमल**जी उनके समयमें थे और जो बड़े तीक्ष्ण-बुद्धि थे। उनकी गोम्मटसार-वचनिकाकी प्रशंसा सभी करते थे। उसीका वाचन, पठन-पाठन और मनन चलता था तथा लोग अपनी बुद्धि बढ़ाते थे। पं० **दौलतराम**जी कासलीवाल बड़े गुणी थे और '**पंडितराय**' कहे जाते थे। राजपरिवारमें वे आते-जाते थे। उन्होंने तीन पुराणोंकी वचनिकाएँ की थीं। उनकी सूक्ष्म बुद्धिकी सर्वत्र संस्तुति होती थी। ब्रह्म **रायमल्ल**जी और शीलव्रती महारामजी भी उस शैलीमें थे। पं० **जयचन्द**जी इन्हीं गुणी-जनों तथा विद्वानोंकी संगतिमें रहने लगे थे। और अपनी बुद्धि अनुसार जिनवाणी (शास्त्रों) के स्वाध्यायमें प्रवृत्त हो गये थे। उन्होंने जिन ग्रन्थोंका मुख्यतया स्वाध्याय किया था, उनका नामोल्लेख उन्होंने इसी प्रशस्तिमें स्वयं किया है। सिद्धान्त-ग्रन्थोंके स्वाध्यायके अतिरिक्त न्याय-ग्रन्थों तथा अन्य दर्शनोंके ग्रन्थोंका भी उन्होंने अभ्यास किया था। उनकी वचनिकाओंसे भी उनकी बहुश्रुतता प्रकट होती हैं। लगता है कि पंडित **टोडरमल**जी जैसे अलौकिक प्रतिभाके धनी विद्वानोंके सम्पर्कसे ही उनकी प्रतिभा जागृत हुई और उन्हें अनेक ग्रन्थोंकी वचनिकाएँ लिखनेकी प्रेरणा मिली।

उक्त प्रशस्तिके आरम्भमें राज-सम्बन्धका भी वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है[1] कि जम्बद्वीपके भरतक्षेत्रके आर्यखण्डके मध्यमें '**ढुंढाहड**' देश है। उसकी राजधानी '**जयपुर**' नगर है। वहाँका राजा '**जगतेश**' (जगतसिंह) है, जो अनुपम है और जिसके राज्यमें सर्वत्र सुख-चैन है तथा प्रजामें परस्पर प्रेम है। सब अपने-अपने मतानुसार प्रवृत्ति करते हैं, आपसमें कोई विरोध-भाव नहीं है। राजाके कई मंत्री हैं। सभी बुद्धिमान और राजनीतिमें निपुण हैं। तथा सब ही राजाका हित चाहनेवाले एवं योग्य प्रशासक हैं। इन्हींमें एक रायचन्द है, जो बड़े गुणी हैं और जिनपर राजाकी विशेष कृपा है। यहाँ 'विशेष कृपा' के उल्लेखसे जयचन्दजीका भाव राजाद्वारा उन्हें 'दीवान' पदपर प्रतिष्ठित करनेका जान पड़ता है।

इसके आगे इसी प्रशस्तिमें रायचन्दजीके धर्म-प्रेम, साधर्मी-वात्सल्य आदि गुणोंकी चर्चा करते हुए उन्होंने उनके द्वारा की गई उस चन्द्रप्रभजिनमन्दिरकी प्रसिद्ध प्रतिष्ठा (वि० सं० १८६१) का भी उल्लेख किया है, जिनके द्वारा रायचन्दजीके यज्ञ एवं पुण्यकी वृद्धि हुई थी और समस्त जैनसंघको बड़ा हर्ष हुआ था[2]।

---

१. जम्बूद्वीप भरत सुनिवेश, आरिज मध्य ढुंढाहड देश।
पुर जयपुर तहाँ सूवस वसै, नृप जगतेश अनुपम लसै।।१।।
ताके राजमांहि सुखचैन, धरैं लोक कहूँ नाहीं फैन।
अपने-अपने मत सब चलैं, शंका नाहिं धारैं शुभ फलैं।।२।।
नृपके मन्त्री सब मतिमान्, राजनीतिमें निपुण पुरान।
सर्व ही नृपके हितकों चहैं, ईति-भीति टारैं सुख लहैं।।३।।
तिनमें रायचन्द गुण धरै, तापरि कृपा भूप अति करै।
ताकैं जैन धर्मकी लाग, सब जैननिसूं अति अनुराग।।—सर्वार्थसिद्धि वचनिका, अ० प्रशस्ति।

२. करी प्रतिष्ठा मंदिर नयौ, चंद्रप्रभ जिन थापन थयौ।
ताकरि पुण्य बढ़ौ यश भयौ, सर्व जैननिकौ मन हरखयौ।।६।।—सर्वार्थसिद्धि-वचनिका, अ० प्रश० ६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रशस्तिमें पं० जयचन्दजीने उनके साथ अपने विशेष सम्बन्धका भी संकेत किया है[1]। उनके इस संकेतसे ज्ञात होता है कि रायचन्दजीने निश्चित एवं नियमित आर्थिक सहायता देकर उन्हें आर्थिक चिन्तासे मुक्त कर दिया था और तभी वे एकाग्रचित्त हो सर्वार्थसिद्धि-वचनिका लिख सके थे, जिसके लिखनेके लिए उन्हें अन्य सभी साधर्मीजनोंने प्रेरणा की थी[2] और उनके पुत्र नंदलालने भी अनुरोध किया था[3]। पं० जयचन्दजीने नंदलालके सम्बन्धमें लिखा है[4] कि वह बचपनसे विद्याको पढ़ता-सुनता था। फलतः वह अनेक शास्त्रोंमें प्रवीण पंडित हो गया था।

पंडितजी द्वारा दिये गये अपने इस परिचयसे उनकी तत्त्व-बुभुत्सा, जैनधर्ममें अटूट श्रद्धा, तत्त्वज्ञानका आदान-प्रदान, जिनशासनके प्रसारका उद्यम, कषायकी मन्दता आदि गुणविशेष लक्षित होते हैं।

पडितजीके उल्लेखानुसार उनके पुत्र पं० नन्दलालजी भी गुणी और प्रवीण विद्वान् थे। मूलाचार-वचनिकाकी प्रशस्तिमें भी, जो पं० नन्दलालजीके सहपाठी शिष्य ऋषभदासजी निगोत्याद्वारा लिखी गई है, पं० नन्दलालजीको 'पं० जयचन्दजी जैसा बहुज्ञानी' बताया गया है[5]। प्रमेयरत्नमाला-वचनिकाकी प्रशस्ति (पद्य १६) से यह भी मालूम होता है कि पं० नन्दलालजीने अपने पिता पं० जयचन्दजीकी इस वचनिकाका संशोधन किया था[6]। इससे पं० नन्दलालजीकी सूक्ष्म बुद्धि और शास्त्रज्ञताका पता चलता है। पं० नन्दलाल-जी दीवान अमरचन्दजीकी प्रेरणा पाकर मूलाचारकी पाँच-सौ सोलह गाथाओंकी वचनिका कर पाये थे कि उनका स्वर्गवास हो गया था। बादमें उस वचनिकाको ऋषभदासजी निगोत्याने पूरा किया था[7]। निगोत्याजीने नन्दलालजीके तीन शिष्योंका भी उल्लेख किया है[8]। वे हैं—मन्नालाल, उदयचन्द और माणिकचन्द।

पं० जयचन्दजीके एक और पुत्रका, जिनका घासीराम नाम था, निर्देश पं० परमानन्दजी शास्त्रीने किया है[9]। पर उनका कोई विशेष परिचय उपलब्ध नहीं है।

यहाँपर एक बात और ज्ञातव्य है। वह यह कि पं० जयचन्दजीकी वचनिकाओंसे सर्व साधारणको तो लाभ पहुँचा ही है, पं० भागचन्दजी (वि० सं० १९१३) जैसे विद्वानोंके लिए भी वे पथ-प्रदर्शिका हुई हैं।

---

१. ताके ढिग हम थिरता पाय, करी वचनिका यह मन लाय।—वही, प्रश० ७।

२. भयौ बोध तब कछु चिंतयौ, करन वचनिका मन उमगयौ।
सब साधरमी प्रेरण करी, ऐसैं मैं यह विधि उच्चरी॥—वही, प्रश० पद्य १०।

३, ४. नंदलाल मेरा सुत गुनी, बालपने तैं विद्या सुनी।
पंडित भयौ बढ़ौ परवीन, ताहूने प्रेरण यह कीन॥—वही, प्रश० पद्य ३१।

५. तिन सम तिनके सुत भये, बहुज्ञानी नन्दलाल।
गाय-वत्स जिम प्रेमकी, बहुत पढ़ाये बाल॥—मूला० वच० प्रश०।

६. लिखी यहै जयचन्दनै, सोधी सुत नन्दलाल।
बुध लखि भूलि जु शुद्ध करि, बाँचौ सिखैवो बाल॥—प्रमेयर० वच० प्र० पद्य १६।

७. मूलाचारवचनिका प्रशस्ति।

८. तव उद्यम भाषातणों, करन लगे नन्दलाल।
मन्नालाल अरु उदयचन्द, माणिकचन्द जु बाल॥—मूलाचारवचनिका प्रश०।

९. 'पं० जयचन्द और उनकी साहित्य-सेवा' शीर्षक लेख, अनेकान्त वर्ष १३; कि० ७, पृ० १७१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमाणपरीक्षाकी अपनी वचनिका-प्रशस्तिमें वे पं० जयचन्दजीके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि उनकी वचनिकाओंको देखकर मेरी भी ऐसी बुद्धि हुई, जिससे मैं प्रमाण-शास्त्रका उत्कट रसास्वादन कर सका और अन्य दर्शन मुझे नीरस जान पड़े[1]।

२. समय

पं० जयचन्दजीका समय सुनिश्चित है। इनकी प्रायः सभी कृतियों (वचनिकाओं)में उनका रचना-काल दिया हुआ है। जन्म वि० सं० १७९५ और मृत्यु वि० सं० १८८१-८२ के लगभग मानी जाती है[2]। रचनाओंके निर्माणका आरम्भ वि० सं० १८५९ से होता है और वि० सं० १८७४ तक वह चलता है। प्राप्त रचनाएँ इन सोलह वर्षोंकी ही रची उपलब्ध होती हैं। इससे मालूम होता है कि ग्यारह वर्षकी अवस्थासे लेकर चौंसठ वर्षकी अवस्था तक अर्थात् तिरेपन वर्ष उन्होंने शास्त्रोंके गहरे पठन-पाठन एवं मनन-में व्यतीत किये थे। और तदुपरान्त ही परिणत वयमें साहित्य-सृजन किया था। अतः जयचन्दजीका अस्तित्व-समय विक्रम सं० १७९५-१८८२ है।

३. साहित्यिक कार्य

इनकी मौलिक रचनाएँ और वचनिकाएँ दोनों प्रकारकी कृतियाँ उपलब्ध हैं। पर अपेक्षाकृत वचनिकाएँ अधिक हैं। मौलिक रचनाओंमें उनके संस्कृत और हिन्दीमें रचे गये भजन ही उपलब्ध होते हैं, जो विभिन्न राग-रागिनियोंमें लिखे गये हैं और 'नयन' उपनामसे प्राप्त हैं। उनकी वे रचनाएँ निम्न प्रकार हैं :—

१. तत्त्वार्थसूत्र-वचनिका	वि० सं० १८५९
२. सर्वार्थसिद्धि-वचनिका★	चैत्रशुक्ला ५ सं० १८६१
३. प्रमेयरत्नमाला-वचनिका★	आषाढ़ शु० ४ सं० १८६३
४. स्वामीकार्त्तिकेयानुप्रेक्षा-वचनिका★	श्रावण कृ० ३ सं० १८६३
५. द्रव्यसंग्रह-वचनिका★	श्रावण कृ० १४ सं० १८६३
६. समयसार-वचनिका★ (आत्मख्याति संस्कृत-टीका सहित की)	कार्त्तिक कृ० १० सं० १८६४
७. देवागम (आप्तमीमांसा)-वचनिका	चैत्र कृ० १४ वि० सं० १८६६
८. अष्टपाहुड-वचनिका★	भाद्र शु० १२ सं० १८६७
९. ज्ञानार्णव-वचनिका★	माघ कृ० ५ सं० १८६९
१०. भक्तामरस्तोत्र-वचनिका	कार्तिक कृ० १२ सं० १८७०

---

१. जयचन्द इति ख्यातो जयपुर्यामभूत्सुधीः।
दृष्ट्वा यस्याक्षरन्यासं मादृशोऽपीदृशी मतिः ॥१॥
यया प्रमाणशास्त्रस्य संस्वाद्य रसमुल्वणम्।
नैयायिकादिसमया भासन्ते सुष्ठु नीरसाः ॥२॥—प्रमाणपरीक्षा-वचनिका, अन्तिम प्रश०।

२. वीरवाणी (स्मारिका) वर्ष १७, अंक १३ पृ० ५० तथा ९५।

★ स्वयंके हाथसे लिखीं चिह्नाकित ग्रन्थ-प्रतियाँ दि० जैन बड़ा मन्दिर, जयपुरमें उपलब्ध हैं।—वीर वाणी (स्मारिका) पृ० ९५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. पदोंकी पुस्तक [मौलिक]

(२४६ पदोंका संग्रह) आषाढ शु० १० सं० १८७४

१२. सामायिकपाठ-बचनिका

१३. पत्रपरीक्षा-वचनिका

१४. चन्द्रप्रभचरित-द्वितीयसर्ग-वचनिका

१५. मतसमुच्चय-वचनिका

१६. धन्यकुमारचरित-वचनिका

इन रचनाओंका परिचय उनके ही नामसे विदित हो जाता है। अतः वह छोड़ा जाता है।

उपर्युक्त विवेचनसे प्रकट होता है कि पण्डित जयचन्दजी छावड़ा विशिष्ट शास्त्राभ्यासी, बहुज्ञानी, संस्कृत-प्राकृत-हिन्दी भाषाओंके ज्ञाता, हिन्दीगद्य-पद्यसाहित्यकार, प्रवक्ता, चारित्रवान्, भद्रपरिणामी और आध्यात्मिक विद्वान् थे। वे जैनदर्शनके साथ ही अन्य भारतीय दर्शनोंके भी मर्मज्ञ थे। उनकी शासन-सेवा एवं साहित्यिक कृतियाँ उन्हें चिरस्मरणीय रखेंगी।

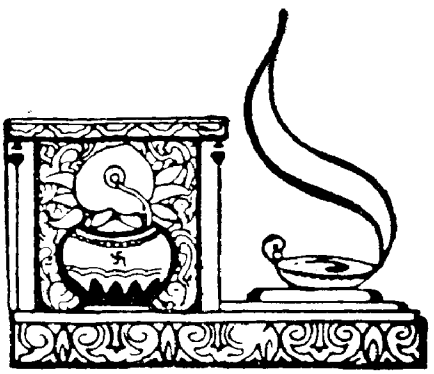

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org